देवबन्द का
नया दीन

खतीबे मश्रिक़
हज़रत अल्लामा मौलाना
मुश्ताक अहमद निज़ामी अलैहिर्रहमा



देवबंद का नया दीन

देवबंदी बोलते है मगर समझते नहीं

एक खुश्क विषय पर ऐसी ज्ञानकारी किताब जिसका अध्ययन ईमान व अक़ीदे की पुख़्तगी व मज़बूती का ज़ामिन है।

लेखक

ख़तीबे मशिरक़ हज़रत अल्लामा

मुश्ताक़ अहमद निज़ामी साहब

अलैहिर्रहमा

प्रकाशक

विषय सूची

पहला बाब

फ़ित्ना-ए-देवबन्दियत का सरसरी जायज़ा

और

अस्रे हाज़िर के चन्द उभरे हुए सवालात के जवाबात

एक जायज़ा

अकेला हूँ मगर आबाद कर देता हूँ व वीराना
बहुत रोएगी मेरे बाद मेरी शामे तंहाई

❖❖❖

मैंने चाहा तो बहुत उनको भुलाना लेकिन
बात यह कोशिशे नाकाम से आगे न बढ़ी

देवबन्दी अकाइद पर तन्क़ीद व तबसरा या उसका इल्मी मुहासबा इस दौर का कोई नया रुजहान नहीं है। न अस्रे हाज़िर की किताबें नक़्शे अव्वल की हैसियत रखती हैं। अह्दे मुग़ल के आखरी ताजदार बहादुर शाह ज़फ़र ही के दौर में ख़ानासाज़ शिर्क व बिदअत के ज़ेरे उनवान इस्माईली फित्ना जन्म ले चुका था। चुनांचे किला–ए–मुअल्ला के मामूलात व मरासिम मसलन : मीलाद व क़याम, न्याज़ व फ़ातिहा वग़ैरह पर जब शिर्क व बिदअत के फ़तावे से अमले जर्राही का आग़ाज़ हुआ तो शाह ज़फ़र का अक़ीदतकेश मिज़ाज़ उन तबअ्ज़ाद फ़तावा पर मुतमइन न हो सका। शैख़े तरीक़त ताजुलउलमा हज़रत मौलाना फ़ज़्ले रसूल बदायूनी रहमतुल्लाह अलैह जिनके इल्म और फ़ज़्ल व कमाल का आफ़ताब निस्फुन्नहार चमक रहा था, उनकी तरफ़ शाह ज़फ़र को रुजू होना पड़ा।

बहादुर शाह ज़फ़र का यह सवाल फ़ारसी ज़बान में था। मौसूफ़ गिरामी ने भी उसी ज़बान में जवाबात को क़लमबन्द फरमाया। सवाल व जवाब दोनों किताबी साइज पर मतबू हैं। उसका एक नुस्खा रईसे कलकत्ता डॉक्टर मौलाना अलीमुद्दीन साहब के कुतुबख़ाने में मौजूद है। **'खून के आंसू'** के तरतीब के दौरान काफ़ी दिनों तक वह नुस्खा मेरे पास भी था जिसका एक ज़ैली तज़किरा **'खून के आंसू'** में आ चुका है। यह

किताब मुख़तलिफ़ फ़िह मसाइल की एक अहम कड़ी है। लेकिन धीरे-धीरे मौलवी इस्माईल देहलवी की वह्हाबियत और मिजाज़ का लाउबालीपन नीज़ ख़ानदानी रिवायात से अलग-थलग एक नए मोड़ की तरफ़ उनका तबई और जेहनी झुकाव जब नुमायां होने लगा तो उलमा-ए-हक़ की तरफ़ से उनकी आवारगी-ए-क़लम का तर्की-ब-तर्की जवाब दिया गया। जा-बजा मुबाहसा व मुनाज़रा की महफ़िलें गरम होने लगीं। चुनांचे इस सिलसिला में अल्लामा फ़ज़्ल-हक़ खैराबादी रहमतुल्लाह अलैह और मौलवी इस्माईल देहलवी से मसअला-ए-इमकान नज़ीर व इम्तना-ए-नज़ीर पर जामा मस्जिद देहली में अवाम और मुआसिर उलमा की मौजूदगी में मुनाजरे का आगाज़ हुआ।

जवाबात न बन पड़ने की सूरत में मौलवी इस्माईल देहलवी बड़बड़ाते हुए रफ़ू-चक्कर हो गए। उसके बाद पूरी दिल्ली में उनकी इल्मी बेमाइगी और जिल्लत व रुस्वाई का चर्चा होने लगा। उनकी हजीमत व शिकस्त की यह दास्तान हर कस व नाकिस की ज़बान पर इतनी आम हो गई कि दिल्ली के गली-कूचों में उन्हें नंगो ख़ानदान कहा जाता था। **'तकवियतुल-ईमान'** जो इब्ने अब्दुल-वह्हाब नज्दी की **'किताबुत्तौहीद'** का चर्बा है, उसकी इशाअत ने पेट्रौल पर आग का काम किया।

वह्हाबी फित्ने का आगाज़ दिल्ली से हुआ लेकिन सहारनपुर, थानाभवन, गंगोह, अंबेठ की सरज़मीन नज्द से वह्हाबियत के लाए हुए बीज की काश्त के लिए बतौर आज़माइश इस्तेमाल की गई। अगरचे इबतिदाई दौर में उसकी आबयारी और खादरसानी का काम दिल्ली से होता रहा लेकिन इस फित्ने को बारआवर बनाने के लिए यह ज़मीन खुद इतनी ज़रख़ेज़ साबित हुई कि थोड़े दिनों बाद उसने दिल्ली को अपना माल सप्लाई करना शुरू कर दिया। अब तो देवबन्द इस्माईली फित्ने का मरकज़ होकर नज्द सानी बन चुका है। मुझे क़ारिईन को यह ज़ेहन देना है कि वह्हाबियत व देवबन्दियत की वह इल्मी ख़्यानतें जो इस्लामी अकाइद व मामूलात की सदियों से महफूज़ अमानत को तितर-बितर कर देना चाहती थीं उसके खिलाफ जबान व कलम का जिहाद इस अहद की बिदअते हसना नहीं है बल्कि अल्लामा फज़्ल-हक़ ख़ैराबादी व मौलाना फ़ज़्ले रसूल बदायूनी-जैसे साहिबे फ़िक्र व बसीरत की दूर-रस निगाहों ने रोज़े अव्वल ही उसकी भयानक तबाहकारियों का भरपूर अंदाज़ा कर लिया था। इस्माईली

तख़रीबकारियों के मुकाबिल उसके इस्तिहसाल व बीख़कुनी की ऐसी नींव डाल दी कि आज तक अह्ले क़लम उसी फलक शिगाफ़ महल को जदीद नक़्श व गार की गुलकारियों से दिलफ़रेब व दीदाजेब बना रहे हैं। अगर कुबूले हक के लिये दिलों का दरवाज़ा खुला हो तो इस हकीक़त के एतराफ़ में एक लम्हा का तअम्मुल नहीं होना चाहिए कि यही हजरात इस फलक बोस इमा रत की असासी ईंट हैं। जब तक देवबन्दियत के मुकाबिल नशतरज़नी का यह सालेह व सेहतमंद दस्तूर जारी रहेगा हर दौर का साहिबे कलम अपने को उन्हीं बुजुर्गों की अयाल तसव्वर करेगा। तारीख़ की पेशानी उन्हीं के नामों से जगमगाती रहेगी।

खुदा ग़रीके रहमत फ़रमाए उन बुज़ूर्गों को जिन्होंने वक़्त के एक अज़ीम फित्ना के मुकाबिल ऐसी ईमा–अफरोज़ व ह्यात–बख़्श शमा रौशन की जिसकी रौशनी से हर साहिबे बसीरत ने हर दौर में इसतिफादा किया।

तारीख़े वह्हाबियत व नजदियत से मुतअल्लिक़ मौलाना फ़ज़्लुर्रसूल बदायूनी की **'सैफुल-जब्बार'** नामी शोहरा आफ़ाक़ किताब नक़्शे अव्वल की हैसियत रखती है। ऐसे ही नजाई मसाइल के जवाबात में मौलाना अब्दुस्समी रामपुरी अलैहिर्रहम : की मक़बूले आम किताब **'अनवारे सातिआ'** को एक कलीदी हैसियत हासिल है। जैसे–जैसे वक़्त गुज़रता गया वैसे–वैसे फित्ना–ए–देवबन्दियत का नुक़्ता–ए–आगाज़ से अंजाम की तरफ़ क़दम उठता रहा। हत्ता कि सैय्यदना इमाम अहमद रज़ा फ़ाजिले बरैलवी रजीअल्लाहु ताअला अन्हु ने उसकी जड़ें खोखली करने के लिए कुछ दिनों उसे मरकज़े तवज्जह बनाया। उनके जुमला मोतकादात बातिला पर अलाहदा कुतुब व रसाइल में ऐसी सैर हासिल गुफ्तगू फरमाई कि अब अगर मुद्दतों कुछ न लिखा जाए तो वही जख़ीरा इतना काफ़ी है कि हरीफ़ को मुदल्ललल व मुसकत जवाबात के लिए हम अपनी राह के किसी गोशा में तारीकी महसूस न करेंगे।

लेकिन हर दौर के हालात जुदागाना होते हैं। अब अगर इस अहद के ज़ेहनी व फ़िक्री मिजाज़ के मुताबिक़ मसाइल की तफ़हीम का अहसन तरीक़ा इख़्तियार न किया जाए तो अक़ाइद की ठोस हकीक़तें सफ़हा–ए–किरतास पर तो महफूज होंगी लेकिन इंसानी जेहनों की तख़्ती पर उसका अक्स न उतारा जा सकेगा। इसलिए हर दौर अपने मिजाज़ के मुताबिक मसाइल की तफहीम का मुताला करता है। जिसकी रिआयत न

करना अपनी फ़िक्री सलाहियतों के मलयामेट कर देने के मुतरादिफ होगा।

चुनांचे जिस वक़्त मैंने **'खून के आंसू'** की तरतीब दी जिस पर जमाअत के अकाबिर व अहबाब ने अपनी जंची–तुली राय रवाना फ़रमाई उनमें मख़दूम गिरामी आली मरतबत हज़रत मौलाना हसनैन रज़ा खां साहब बरैलवी की राय अगर बारे ख़ातिर न हो तो जैल की सतरों में मुलाहज़ा फ़रमाएं। जिससे इस दावे की तसदीक़ हो सकेगी।

(१) अस्सलामु व अलैकुम................................ मिजाज़ गिरामी!

"आज मैंने आपकी किताब (**खून के आंसू**) देखी। बेहद मुसर्रत हुई। लिहाज़ा आप याद रखें कि उर्स के मौक़ा पर एक नुस्खा **"खून के आंसू"** ज़रूर साथ लेते आएं। मैं आपकी अनोखी तहक़ीक़ात देख कर बहुत मसरूर हुआ हूँ। मैं असबाबे ज़वाल के दूसरे हिस्सा में इससे भी मदद लूँगा। इस सिलसिले में मुझे अपने मरहूम मेहरबान मौलाना काज़ी गुलाम सज्जाद साहब की एक बात याद आई। उन्होंने जब **"असबाबे ज़वाल"** का मुबैय्ज़ा देखा तो बहुत खुश हुए और वापस करते वक़्त कहने लगे कि मैं इस किताब को देख कर इस नतीजा पर पहुंचा हूँ कि रद्दे मुबतदईन आपके खानदान का ही हिस्सा हो गया है। आला हज़रत कुदुस सिर्रहु ने तमाम मुबतदईन का रद्द इल्मी हैसियत से किया और ऐसा किया कि क़यामत तक के लिए काफी है। तुमने इस रद्द का दूसरा रास्ता इख़्तियार किया है। अब मुसन्निफीन इधर आएंगे। यह किताब एक पगडंडी है जिसे अगले मुसन्निफीन शारे आम कर देंगे। खुदावन्द आलम आपको शाद व आबाद रखे और ज़्यादा से ज़्यादा आपसे ऐसी दीनी खिदमात ले जिनसे वह और उनका प्यारा रसूल राज़ी हों। वस्सलाम.........दुआगो हसनैन रज़ा।

वाजेह रहे सदियों गुज़र जाने के बाद भी मसाइल की असल सूरत मसख़ नहीं होती "अलबत्ता उन पर गाज़ा व सुर्ख़ी की तज़ईन का तरीक़े कार बदल जाता है या उन कुल्लियात पर जुज़्ज़ियात की जो तफरीअ़ होती है वह जुदागाना तशरीह तलब होते हैं। तदरीजन उसकी वज़ाहत होती रहती है। बहरहाल जब तक कोई बातिल मज़हब जिन्दा रहता है और जैसे–जैसे वह अपने बतलान की सेहत साबित करने के लिए नए–नए चोर दरवाज़े तलाश करता है। वैसे–वैसे अह्ले हक़ की बतलान–परस्ती का राज़ फाश करने के लिए कुरआन व सुन्नत व अ़कवाले सलफ़ को ब–वुजूह अहसन पेश करते रहते हैं ।

माज़ी में ऐसा हुआ है, अब हो रहा है और आइन्दा होता रहेगा। लेकिल अह्ले कलम को अस्रे हाज़िर के मुकतिज़यात की भरपूर रिआयत एक अम्र नागुज़ेर है। अगर ऐसा न किया गया तो अंदेशा है कि हरीफ़ की तेशाकारियों से अकाइद के आहनी महल में ऐसा शिगाफ़ आ जाए जिसके भरने के लिए बड़ी ताकत का इस्तेमाल करने की जरूरत महसूस की जाए। दानिशवरी यही है कि बारिश से पहले छप्पर दुरुस्त कर लिया जाए। मेरे अपने ख़्याल में यह जो कुछ भी होता है तहतुश–शऊर में यही जज़्बा कार फ़रमा होता है कि अस्री मिजाज़ के मुताबिक मसाइल को पेश करने की वह राह इखतियार की जाए कि हक का मुतलाशी उसके कुबूल व इत्तिबा में इंबिसात व सुरूर और मुतअस्सिब उसके इन्कार में जेहनी व क़ल्बी बोझ व इन्क़बाज महसूस न करे।

चुनान्चे **"देवबन्दी बोलते हैं मगर समझते नहीं"** नाम की ज़ेरे मुताला किताब भी इसी उसूल व ज़ाब्ता की आईनादार है। इस किताब का मुहर्रिक कौन है और क्यों लिखी गई? उसे आप गुज़िशता सफहात में मुलाहजा फ़रमा चुके हैं। लेकिन हम अस्रे हाज़िर के एक उभरे हुए सवाल का जवाब देना ज़रूरी समझते हैं। यह मकाम कारिईन के लिए काबिले तवज्जह है!

एक गलत-फ़हमी का इजाला!

आज यह बात कही जाती है और बाज अनाड़ियों और बिलखुसूस रिकाबिया मजहब वालों से कहलाई भी जाती है कि वक़्त इसका नहीं रह गया कि ऐसे मसाइल पर कलम उठाया जाए जिससे इख़्तिलाफ़ात की खलीज निपटने के बजाए और वसीअ़ हो जाए।

लिखने के लिए और बहुत से मौजू हैं। अगर जूदते तबा की आज़माइश मक़सूद है या रुशहाते क़लम के नुकूस को दाईमी ज़िन्दगी देनी है तो उसके अलावा भी नित नए मुन्तशिर उन्वानात हैं जिस पर ज़ेहन व फ़िक्र की तवानाईयाँ बरूए कार लाई जा सकती हैं। एक फ़ित्ना–ए–देवबन्दियत ही के खिलाफ जबान व कलम का नशतर क्यों इसतेमाल किया जाता है। आज का माहौल बड़ा नाजुक है। यह उखुव्वत व मसावात और भाईचारगी का एक खुशआईन्द दौर चाहता है लिहाजा राह वह इख़्तियार किया जाए कि हर कलिमा–गो के दरम्यान मेल–मिलाप की खुशगवार फिजा पैदा हो।

माजी में जो हो गया है, वह क्या कम है। अब तो कलम का रुख़ मोड़ कर एक ऐसी शाहराह बनाई जाए जिस पर चल कर हम माजी की तल्ख़ियों को यकसर भूल जाएं वगै़रह जालिक। वाज़ेह रहे यह किसी अजनबी जेहन व फिक्र का सवाल नहीं है बल्कि ब–गुमाने ख़्वेश उन दानिशवरों का जो बजाए खुद अपने को इस दौर का अरस्तू और जालिनौस समझते हैं। यकीनन यह सवाल जाहिरी शक्ल व सूरत में भरपूर माकूलियत का आईनादार है। इस जाहिरी बांकपन में दिलों के मोह लेने की मिकनातीसीयत न होती तो आज के बोकराते ज़माना इसके शिकार ही क्यों होते?

हर चन्द मुन्दरजा बाला सवाल में माकूलियत, एतिदाल, सन्जीदगी और मतानत है। मगर अफसोस यह कि उसका वह नशेब आंखों से ओझल है जहाँ पानी मर रहा है।

दोस्तो! दुनिया के सारे मसाइल अक्ल और नज़र व फ़िक्र ही के कल–पुर्जों से ही हल नहीं होते। इस काइनात की चहल–पहल, हमाहमी, रंगारंगी, दिलकशी व रानाई में अक्ल व शऊर और साईंस ही को तन्हा दखल नहीं है बल्कि जेहन व फ़िक्र की अकलीम में हज़रते दिल भी फरमांरवा व हुक्मराँ नज़र आते हैं। किसी ने कहा और अच्छा कहा है :

लाजिम है दिल के पास रहे पासबाने अक़्ल
लेकिन कभी-कभी उसे तन्हा भी छोड़ दे

वाजेह रहे कि अगर मसाइल के हल करने का वाहिद तरीका महज जेहनी मूशगाफियाँ हों और निजामे अलम का सारा कारोबार उसके सुपुर्द कर दिया जाए तो यकीन कर लीजिए कि काइनात की रवाँ–दवाँ मशीनरी यकलख़्त ठहर जाएगी। दुनिया के न जाने कितने ऐसे फुनून जो अंजुमनों की बाग़ व बहार हैं, वह दम तोड़ कर पैवन्दे खाक हो जाएंगे।

मसलन फ़न्ने शाइरी! क्या आपका यह गुमान है कि यह फन्न महज़ जेहन व फिक्र की पैदावार है। नहीं और हरगिज नहीं। यह तो एक हकीकत है कि फन्ने शाइरी में जेहन व फ़िक्र की सारी सलाहियतें इस्तेमाल की जाती हैं मगर ज़ेहन नोके ज़बान को वही दौलते गिरांनुमाया देता है जो उसे दिल के खजाने से मयस्सर आती हैं। किस कद्र अंधेर है कि तकसीम करने वाला हाथ तो देखा जाए मगर यह हाथ जिस खजाने से दौलत ले रहा है, दाद व दहिश की शोहरत व नामवरी के वक़्त उसका नाम तक न लिया जाए!

यूरोप हो या एशीया व अफ़्रीक़ा–दुनिया की शायद ही कोई ऐसी बदनसीब व महरूमुल–किस्मत कौम होगी जिसकी ज़िन्दगी शेर व सुख़न की नग़्मा–सराईयों और क़ल्ब व जिगर को गरमा देने वाले गीतों, नज़्मों, रूमानी ग़ज़लों, बज़्मिया रज़्मिया, कसाइद, मरासी और नौहा वग़ैरह की लाजवाल दौलत से मालामाल न हो। वाज़ेह रहे हर मुल्क का यह फनकार "शाइर" जो अपनी ज़बान व अदब का मुहाफिज़ व पासबाँ है वह जो कुछ कहता है जेहन व फ़िक्र के तकाजे की बुनयाद ही पर नहीं बल्कि दिल की धड़कनें उसके सोते हुए फिक्र व शऊर को बेदार करती हैं। आबशरों की तरह फूट पड़ते हैं। उस वक़्त तक के लिए नींद हराम हो जाती है तावक्ते फि हिज्र का मारा हुआ या विसाल के सागर में नहाया हुआ दिल वारदाते कल्ब के जेहन व फ़िक्र के हवाले न कर दे। यही वजह है ऐसे अशआर जो महज जेहन की पैदावार हैं इनमें दिल की कसक और कल्ब व जिगर के चोट की आमेज़श नहीं होती। इनसे दिल मुतअस्सिर नहीं होता बल्कि अक़्ल उसका तआकुब करती है और वह उसी की गौर व फ़िक्र का मरजा बन जाता है। मसलन

मगस को बाग़ में जाने न देना
कि नाहक ख़ून परवाने का होगा

यानी शहद की मक्खियाँ बाग़ में जाएंगी तो शहद का छत्ता लगाएंगी। शहद निकालने के बाद उसमें मोम भी निकलेगा। फिर मोम से मोमबत्ती बनेगी और मोमबत्ती जलेगी तो परवानों का नाहक खून होगा। गोया यह शैतॉन की आंत है कि खींचते जाईए और बढ़ती जाए। उसे ज़बान व अदब का शे'र कहा जाता है। मगर दिल की दुनिया में उसे न तलातुम खेज़ मौजें उठती हैं और न ही दिल उससे चोट खाता है।

उसके बरख़िलाफ़ ऐसे अशआर जो महाकात व जज़्बात से लबरेज़ हों उनके सुनते ही काईनाते दिल में एक तूफ़ान बरपा होता है। जज़्बात व एहसासात की अथाह मौजें उठने लगती हैं जिगर का एक शे'र मुलाहज़ा कीजीए –

जान ही दे दी जिगर ने आज पाए नाज़ पर
उम्र भर की बेकरारी को करार आ गया

जान ही दे दी, पाए नाज़, उम्र भर की बेक़रारी, क़रार, शे'र के अलग–अलग टुकड़ों का तज्ज़िया कीजीए तो ऐसा महसूस होता है कि

बजाए खुद हर टुकड़ा एक नशतर है जो बराहेरास्त दिल को घायल और ज़ख्मी कर रहा है। जिगर का एक दूसरा शे'र है जिसमें बड़ी बरजस्तगी और भरपूर मानवियत है–

मैंने सीने से लगाया दिल न अपना बन सका
मुस्कुरा के तुमने देखा दिल तुम्हारा हो गया

बहुत ही सादा शे'र मगर वारदात की एक मुकम्मल दास्ताँ है। शहीरे अरब व अजम सय्यदना इमाम अहमद रज़ा बरैलवी रज़ीअल्लाहु तआला अन्हु फरमाते हैं :

जान व दिल होश व खिर्द सब तो मदीने पहुँचे
तुम नहीं चलते रज़ा सारा तो सामान गया

अल्लाहु अकबर! एक मुहब्बे सादिक़ बरैली की मसनदे इल्म पर जल्वापाश व जल्वाबार है। तसब्बुरात की दुनिया में पूरी मताए ज़िन्दगी को मदीना भेज कर खुद अपने न पहुँचने का तजकिरा किस वालहाना अन्दाज़ में करता है।

तुम नहीं चलते रज़ा सारा तो सामान गया

मौलान हसन रज़ा फरमाते हैं :

दिल दर्द से बिस्मिल की तरह लोट रहा हो
सीने पे तसल्ली को तेरा हाथ धरा हो

दिले मुज़तर का बिस्मिल की तरह लोटना और तसल्ली के लिए किसी दिलनवाज़ हाथ का तलबगार होना इससे दर्द आशना दिल ही लज्जत–शनास हो सकता है। आरिफे हक़ हज़रत आसी फरमाते हैं :

दर्दे दिल कितना पसन्द आया उसे
मैंने जब आह की उसने वाह की

खुश्क और सादा शे'र मगर शेरियत व मानवियत का एक सागर है जिसमें नहाईए, तैरिये, डूबिए। हुस्ने हक़ीक़ी को हुस्ने मजाज़ी का लिबास देकर समझाने का तेवर मुलाहजा कीजीए। सरकार आसी फरमाते हैं :

उसका पता न पूछो बस आगे बढ़े चलो
होगा किसी गली में तो फित्ना उठा हुआ

किसी नामालूम शाइर का शे'र सतहे जेहन पर उभर आया। मुलाहजा फरमाइए–

डूबते सूरज से यह पूछा उभरते चाँद ने
कब से रेगे गरम पर रखा है रुखसारे हुसैन

शे'र को सुनते ही तसव्वुरात की दुनिया में एक हैजान पैदा होता है। गोया अहले–बैत की अक़ीदत में डूबा हुआ दिल फतिमा के नूर निगाह की बलाएं लेने लगता है। मअन इस दुनिया से हम करबला पहुँच जाते हैं। 'रेगे गरम', 'रुखसार हुसैन', – यह ऐसे टुकड़े हैं गोया दिल पर अनी और बरछी का काम करते हैं। इमाम आली मकाम के तसव्वर में उर्फी का शे'र याद आया :

कसे गज़राह औलादत ब-मज़गाँ ख़ार मी चुनैद
नवीसद बाग़बान रौजा-ए-तूबा गुले आफ्शानश

उसके बर–खिलाफ ऐसे अशआर जो सिर्फ ज़बान व अदब के होते हैं उससे जेहनी व फिक्री लज्जतें ज़रूर महसूस होती हैं मगर बराहेरास्त उनका दिल पर कोई असर नहीं होता। मसलन जिगर का ही एक शे'र है–

ऐ मुहतसिब न फेंक मेरे मुहतसिब न फेंक
ज़ालिम शराब है! अरे ज़ालिम शराब है!

यह सिर्फ ज़बान का शे'र है जिसमें शाइर ने ज़ालिम शराब है, अरे जालिम शराब है की तकरार से अपने ख़्याल के मुताबिक शराब की अहमियत और उससे अपने तबई ज़ौक़ को उजागर करने की कोशिश की है। अन्दाजे ब्याँ में नुदरत, बरजस्तगी, उभरा हुआ तेवर है जिसने शे'र को जानदार बना दिया है।

कारिईन से इन्तिहाई मअजरत के साथ मैं फिर उसी नुक़्ता–ए–आग़ाज़ पर आने की दावत दूँगा जहाँ से आपने रख़्ते सफर बाँधा था। यानी किसी नाबकार–दीदा–देहन, गुस्ताख़ व बे–अदब ने सरकारे दोआलम सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम को कुछ कह दिया तो वह जाने, उसका काम जाने। उस मौज़ू पर इस कद्र लिखने की क्या ज़रूरत है?

मैंने यही अर्ज किया था कि यह खोटी अक़्ल की फहमाइश है। मगर काइनात का यह सारा निजाम अकल व साइंस ही के हाथ नहीं है बल्कि इस अकलीम पर दिल की भी फरमांरवाई चलती है।

याद रहे कितने ऐसे मवाक़े हैं कि अक़्ल कहती है और समझाती है मगर बड़े–से–बड़ा फलसफी व मनतक़ी इस पर अमल नहीं कर पाता। साईंस की सारी तवानाईयाँ दम तोड़ देती हैं। अक़्ल व खिर्द पर गोया परदे पड़ जाते हैं। मगर एक साईंसदाँ, मनतक़ी, फलसफी दिल के हाथों मजबूर होता

है। इसकी मिसाल में **'शेरुल-अजम'** की चन्द सतरों को मुलाहज़ा कीजिए–

''इन्सानी मुआशरा की कल फलसफा या साईंस से नहीं बल्कि जज़्बात से चल रही है। फ़र्ज़ करो एक बूढ़े शख़्स का बेटा मर गया है और लाश सामने पड़ी है। यह शख़्स अगर साईंस से राय ले तो यह जवाब मिलेगा असबाब जमा हो गए जिनकी वजह से दौराने ख़ून या दिल की हरकत बन्द हो गई। इसका दूसरा नाम **'मरना'** है। यह एक मकान वाके है जो नागुजेर वुकू में आया और चूंकि दोबारा ज़िन्दा होने की कोई तदबीर नहीं इसलिए रोना–धोना बेकार बल्कि एक हिमाक़त का काम है। लेकिन क्या तमाम आलम में एक शख़्स का भी इस पर अमल है? क्या खुद साईंसदाँ इस उसूल से काम ले सकता है। बच्चों का प्यार, माँ की ममता, मुहब्बत का जोश, ग़म का हंगामा, मौत का रंज, विलादत की खुशी–क्या इन चीज़ों को साईंस से कोई तअल्लुक़ है?''

लेकिन अगर यह चीज़ें मिट जाएं तो दफअतन सन्नाटा छा जाएगा और दुनिया का क़ालिब बे–जान, शराब बे–कैफ़, गुल बे–रंग, गौहर बे–आब होकर रह जाएगी। दुनिया की चहल–पहल, रंगीन दिलआवेज़ियाँ, दिलफरेबी साईंस की वजह से नहीं है। बल्कि इन्सानी जज़्बात की वजह से है जो अक़्ल की हुकूमत से करीबन आज़ाद है।

(**'शेरुल-अजम'** हिस्सा चहाररुम सफ़ा ७१)

अगर इस नज़र से आपका इत्तिफाक़ है और यह उसूल आपकी नज़र में कोई नाकाबिले इन्कार हकीकत है तो मुझे कहने दीजीए कि आक़ा–ए–काइनात सय्यदुल–मुरसलीन महबूबे किर्दगार अलैहित्तहियः वस्सना के दामने आबरू से खेलने की साज़िश की जाए। उन्हें यासीन, व ताहा, मुज्जममिल, मुद्दससिर कहने के बजाए 'गाँव का ज़मीन्दार' और 'चौधरी' लिखा जाए। शाफी–ए–महशर, साक़ी–ए–कौसर के बजाए अपने–जैसा बशर और 'बड़े भाई' का मरतबा दिया जाए। उनका वह इल्म पाक जिसके हुज़ूर जिबरईले अमीन अपना दामने सवाल फैलाए सर खमीदा हों उस हामिल वह्ये इलाही के इल्म पाक को बच्चों, पागलों जानवरों–ऐसा इल्म कहा जाए। अपने मरे हुए मौलवियों की क़सीदा–खानी की तरंग में उन्हें नूर व ज़िन्दा लिखा जाए। (**'शैखुल-इस्लाम'** नम्बर मुलाहजा कीजिए)

मगर महबूबे किर्दगार को मर कर मिट्टी में मिलने वाला लिखा जाए। मैं इस मकाम पर पहुँच कर दुनिया से इन्साफ का तलबगार हूँ कि ईमान

व अक़ीदत जो अक़्ल का नहीं बल्कि दिल का सरमाया-ए-हयात है, उसे मौलवियत के लिबास में कज़्ज़ाक़ों ने पूरी बेदर्दी से लूटा है। दिल की दुनिया में आग लगा कर ईमान व अक़ीदे की पूरी मताए अज़ीज़ को खाकसतर बनाने की मुनज़्ज़म साज़िश रची है। हमारी नज़रों के सामने ईमान व अक़ीदे के आहनी महल पर पथराव किया जाए। इस पर हमें चार आंसू बहाने के बजाए यह कहा जाए कि यह वक़्त रोने का नहीं कुछ कहने और लिखने का नहीं है। अक़्ल का तक़ाजा है कि मेल-मिलाप की फिज़ा पैदा की जाए। सच-सच बताओ क्या एक जवाँ साल बेटे की मैय्यत पर बाप को रोने से रोका जा सकता है। अगर जवाब नफी में है और यकीनन है तो **'तक़्वियतुल-ईमान'**, **'हिफ़्जुल-ईमान'**, **'बराहीने-कातिआ'**, **'अशशहाबुस्साक़िब**-जैसी कुफ़्री व गंदी किताबों के मुक़ाबिल अक़्ल के स्टेज पर यह कैसा नंगा नाच हो रहा है कि इस क़द्र दिलआजार और कुफ़्रियात से भरपूर किताबें छपती रहें लेकिन इसके खिलाफ़ मुँह से कोई बात न कही जाए और न ही नोके कलम पर कोई नुक़्ता आने पाए। याद रहे जब तक बातिल कैम्प से चाँदमारी का यह नापाक सिलसिला जारी रहेगा उस वक़्त तक हक़-परस्तों का दारुल-इफ्ता इनके कलेजे को निशाना बनाता रहेगा। या तो उन्हें तौबा करनी है या फिर ऐसे ही उमर भर मुर्ग़ बिस्मिल की तरह तड़पना है। मुल्क में हज़ार शोर मचाए कि हाय! हाय! हमें काफिर बनाया जा रहा है। मगर दीदावरों ने समझ लिया कि तुम्हें काफिर नहीं बनाया जा रहा है। बल्कि जिन कुफ्रियात को तुम अपनी लम्बी दाढ़ी और लम्बे दामन में छुपाते हो तुम्हारे चेहरे का नक़ाब उठाकर असल हकीक़त बताई जा रही है कि कुफ़्र बोल कर अब तुम मुसलमान नहीं रहे। बल्कि काफिर हो चुके हो। उसे काफिर बनाना नहीं कहा जाता बल्कि काफिर बताना कहा जाता है।

इस मबसूत और वाजेह तम्हीद के बाद यह हकीक़त आशकार हो गई कि यह मसअला अक़्ल का नहीं बल्कि दिल का है।

जिस तरह यह कहना कि शफक़ और क़ौस कज़ह की क्या तारीफ है उसे अकल बताएगी, दिल नहीं बताएगा।

'मुसल्लस के तीनों ज़ाविये बराबर हैं दो ज़ाविया काईमा के'-यह अकलीदस का एक ज़ाब्ता है। इसे अकल हल कर लेगी, दिल तसलीम कर लेगा, मगर अव्वल मरहला में उसका दिल से काई तअल्लुक नहीं।

खत्ते मुस्तकीम पर खत्ते मुस्तकीम गिरने से नव्वे (९०) दर्जे के दो ज़विया काईमा पैदा होते हैं। इसमें अक्ल की दौड़–धूप काम आएगी और इस मसअला से वही लज्ज्त शनास होगी। इससे एक ज़खमी दिल का मदावा–ए–ग़म तजवीज़ करना महज़ अपने को फरेब देना है।

इजतमा नुकयज़ैन मुहाल है "यानी दो जिद्दों का एक ही ज़र्फ़ में एक ही वक्त में जमा होना मुहाल है।"

इसी तरह "**वुजूद लाज़िम मुसतलज़िम है वुजूदे मलजूम को**" यानी लाज़िम के पाए जाने से मलजूम का पाया जाना जरूरी है। मसलन चाँदनी अगर पाई जाय तो चाँद का होना जरूरी है। चूंकि चाँदनी लाज़िम है और चाँद मलज़ूम है। ऐसी ही उसके बरअक्स दूसरा क़ानून है। इन्तफ़ा लाज़िम मुसतल्ज़िम है, इन्तफ़ा मलजूम को। यानी अगर लाज़िम को नहीं पाया जाए तो मलजूम नहीं पाया जाएगा। ऐसे ही वुजूदे खास मुसतल्ज़िम है वुजूद आम को और इन्तकामे आम मुसतलज़िम है इन्तकामे ख़ास को। यह मनतकी उसूल हैं। उन्हें अक़्ल की कसौटी पर जांचा परखा जाएगा। इन मसाइल से दिल को दूर से भी कोई राबता नहीं है।

इसी तरह फलसफियों का कहना है अनासिर में कौन व फसाद होता है। यानी एक सूरते नौईया को छोड़ कर दूसरी सूरते नौईया इख्तियार कर लेना। मसलन : लोटे में पानी और बर्फ डाला जाए। ज़्यादा ठन्ढक बढ़ने के बाद आप लोटे की सतह पर पानी की बूँदें देखेंगे। यह पानी अन्दर से नहीं आ रहा है बल्कि लोटे की सतह इतनी ठन्डी हो गई है कि उसके करीब की हवा अपनी सूरत को छोड़ कर पानी से बदल गई। यानी हवा ने पानी का रूप धार लिया। गोया हवा का फसाद हवा और पानी का कौन। उसी को फलसफा की इसतिलाह में 'कौन व फसाद' कहते हैं।

मालूम हुआ यह मन्तकी उसूल व जाब्ते में इससे अकल को दिलचस्पी हो सकती है मगर इन मसाइल से दिल मानूस नहीं हो सकता। चूंकि यह उसका अपना मसअला नहीं है। बस जिस तरह इन अकली मसाइल को दिल का मसअला नहीं कहा जा सकता। ऐसे ही ईमान और सरकारे दो आलम की अकीदत व मुहब्बत हत्ता कि उन्हें माँ बाप और जान–व–माल से ज़्यादा महबूब रखना यह अकल के सोच व विचार का मसअला नहीं है। बल्कि दिल के कुबूल करने का और उसकी गहराइयों में उतर जाने की एक नाक़ाबिले इन्कार हकीक़त का नाम ईमान है। यहाँ

पहुँच कर शरीअते इस्लामिया की दूररस निगाहों का सही अन्दाज़ा होता है कि ईमान का मामला अकल के सपुर्द नहीं किया गया बल्कि दिल के हवाले किया गया। इसलिए मब्दाए फैय्याज़ से मान लेने की जो सलाहियत कल्ब को वदीअत की गई है वह अक़्ल के हिस्से में नहीं आई। अक़्ल का मामला तो यह है कि दलाइल व बराहीन के कुव्वत व ज़ुअ़्फ़ को देख कर राय में तब्दीली आ जाती है। मगर मान लेना जो दिल का काम है उसका आलम तो यह है –

यह वह नशा नहीं जिसे तुर्शी उतार दे
मान लेने की फ़ितरत ही जुदागाना होती है।

हज़रत बिलाल रज़ि० खुदाए क़दीर उनकी क़ब्र पर अपनी रहमतों के फूल बरसाए। आमीन। कुफ़्फ़ारे मक्का ने उनकी छाती पर तपते हुए गर्म पत्थरों की सीलें रखीं। गर्म–गर्म रेत पर लिटा का उनके सीने पर हुमकते रहे। अक़्ल थपकिया देतीं रही और फ़हमाइश करती रहीं कि उन जानकाह आलाम व मसाइब व शदाइद का मुक़ाबला अब आसान नहीं है। बदन की हड्डियाँ चटख़ रहीं हैं; रगों से फट कर ख़ून रिस्ने व बहने लगा; आंखें उभर आईं; गले में कांटे पड़ गये। हज़रत बिलाल के सीने पर ज़ुल्म व तशद्दुद बेशर्मी व बेहयाई का नंगे इन्सानियत किरदार और दिलसोज़ मुज़ाहरा हो रहा है। अरब के दानिशवर समझाते रहे अक़्ल पर अक़्ल की तरकश का कोई तीर पैवस्त न हो सका।

मुझे कोई बताए कि अक़्ल ने बज़ाहिर क्या बुरा किया? उसका ज़ाहिरी चम–ख़म सिर्फ हसीन व दिलफ़रेब ही नहीं बल्कि हक़ीक़त व सदाक़त का एक नाक़ाबिले इन्कार ज़ाब्ता मालूम होता है। मगर बतलाईये अक़्ल फ़ातेह हुई या दिल?

अक़्ल हुकमरां साबित हुई या दिल का तख़्त व ताज सलामत रहा। हक़ीक़त इतनी–सी है। मुहब्बत की वह लतीफ़ कैफियत जिसे दिल ने सरमाया–ए–ह्यात और हासिले ज़िन्दगी समझ रखा है वह इस ख़ातिर जान तो दे देगा मगर इश्क की आबरू को सरे बाज़ार नीलाम नहीं कर सकता।

कोई समझे तो एक बात कहूँ
इश्क़ तौफीक़ है, गुनाह नहीं

बस हमारा मामला देवबन्द के साथ कुछ ऐसा ही है कि इस राह में हमें तीरे मलामत का निशाना बनाए या मुंह भर गालियां दीजिए हम इश्क व

मुहब्बत के जिस नशे में डूबे हुए हैं उसमें सरे–मू फ़र्क़ नहीं आ सकता। मामला हमारा नहीं है बल्कि महबूब दोजहां का है। जब तक देवबन्दी मक्तबा–ए–फ़िक्र **'तक़वीयतुल-ईमान'**, **'हिफ़्ज़ुईमान'**, **'बराहीने-क़ातिआ'**–जैसी गन्दी और तौहीने नुबुव्वत से भरपूर किताबों की इशअत करता रहेगा उस वक़्त तक हमारी ज़ुबान व क़लम पर कोई पहरा नहीं बैठा सकता। यह हमारा एक आईनी दस्तूरी हक़ है जिसे जब्र व इस्तिब्दाद के हाथों छीनना ज़ुल्म व नाइन्साफ़ी के मुतरादिफ़ होगा। अगर ऐसा हुआ तो उसके ख़िलाफ़ हमेशा सदाए एहतजाज बुलन्द होगी तावक़्ते कि हक़ बहक़दार रसीद की नौबत न आ जाए।

वाक़िफ़ तो हैं इस राज़ से यह दार व रसन भी
हर दौर में तकमीले दफ़ा हम से हुई है

दूसरा बाब

एक गुमराह व ग़लत प्रोपेगंडे की बरहना तस्वीर

यह उड़ी-उड़ी-सी रंगत, यह खुले-खुले से गेसू
तेरी सुब्ह कह रही है तेरी रात का फ़साना

शराबे कुहना दर जामे नौ

ग़ैरों से कहा तुमने, ग़ैरों से सुना तुम ने
कुछ हम से कहा होता, कुछ हम से सुना होता

आज देवबन्द की एक शातिराना चाल यह भी है कि वह अपने गुमराह और ग़लत प्रोपगंडे इस तरह यक़ीन दिलाना चाहता है कि देवबन्द और बरैली का इख़्तिलाफ़ात महज़ मीलाद, क़याम, फ़ातिहा, उर्स वग़ैरा का है। उसी के साथ उन इख़्तिलाफ़ात को बरैली के सर थोपना चाहता है। बाज़ कम लिखे पढ़े और हालात से नाआशना लोग उस प्रोपगन्डे का शिकार भी हो जाते हैं। मुक़द्दमा में इसी ग़लत फ़हमी का इज़ाला मक़सूद है।

वाज़ेह रहे! इख़्तिलाफ़ात की ज़िम्मादारी बरैली के सर नहीं है बल्कि देवबन्द ने ख़ानासाज़ एक नए मज़हब की दाग़–बेल डाली जिसकी बुनियाद – तौहीने नुबुव्वत, रसूल दुश्मनी, वली दुश्मनी पर है। चुनांचे उनकी चन्द कुफ़्री व गन्दा इबारात का मफ़हूम दर्ज किया जाता है जिससे यह अन्दाज़ा हो सकेगा कि पूरी तेरह सदी में देवबन्द के अलावा अपने अस्लाफ़ में मोतक़द्दमीन व मुतअख़िरीन में न किसी ने ऐसा कहा है और न लिखा है। सिर्फ देवबन्द की जसारत और ढिठाई है।

(१) **मसलन** : देवबन्द का यह कहना है कि जो इल्म रसूले खुदा का है उसमें रसूलुल्लाह ही की क्या तख़्सीस। ऐसा इल्म तो हर पागल, बच्चे, मजनून, जानवर सभी को हासिल है। मआज़अल्लाह!

(२) देवबन्द का यह कहना है कि बन्दा तो झूठ बोले। अगर खुदा झूठ बोलने पर क़ादिर न हो। बन्दे की ताक़त खुदा से बढ़ जाएगी। **मआज़अल्लाह!**

नोट : चुनांचे मुजद्दिदीने मिल्लत आला हज़रत सय्यदना इमाम अहमद

फाज़िल बरैलवी रज़ि॰ ने '**फ़तावा रिज़वीया**' जिल्द अव्वल पेज ७४५ पर अक़ाइद के ब्यान में उस गन्दे अक़ीदे पर इलज़ामात पेश किये हैं और '**सुब्हानुस्सुबूह**' वगैरा जैसे रसाइल में इस बातिल अक़ीदे के ख़िलाफ़ दलाइल व बराहीन पेश करके उसके बख़िए उधेड़ दिये हैं। लेकिन उनकी ढिठाई का यह आलम है कि अपने गिरेबान में मुंह डाल कर सोच व बिचार करने के बजाय खुद इमाम अहमद रज़ा पर यह इल्ज़ाम लगाते हैं कि मौलाना अहमद रज़ा खाँ रज़ि॰ ने अल्लाह तबारक व तआला को गालियां दी हैं वग़ैरा वगैरा। अगर सनद–याफ़्ता जाहिल खंडिया स्ट्रीट बम्बई के जल्से में ऐसा कहे तो कुछ ज्यादा मक़ामे तअज्जुब नहीं। मगर भिवंडी की वह नश्स्ति जो तारीखे मुनाज़रा थी उसमें मौलवी इरशाद अहमद जैसे देवबन्द के मुबल्लिग़ व सफीर का यह कहना यकीनन मक़ामे हैरत है। चुनांचे ग़नी रहीमुल्लाह देवबन्दी की बिल्डिंग में मैंने मौलवी इरशाद अहमद साहब से यही कहा था कि अगर आप अपने दावे में सच्चे हैं तो जो कह रहें हैं वही लिख कर मुझे दे दीजिये और '**हिफ़्ज़ुल-ईमान**' की कुफ़्री इबारत पर मुनाज़रा से पहले इसी मौज़ू पर हमारा और आपका मुनाज़रा हो जाए। यह सुनते ही मौलवी इरशाद, मौलवी नूर मुहम्मद टांडवी और उनके तमाम साथियों के चेहरे पर हवाईयाँ उड़ने लगीं। मैंने तहरीर का हर चन्द मुतालबा किया मगर मौलवी इरशाद अहमद साहब टस–से–मस न हुए। सर झुकाए बैठे रहे। मैंने पूरी जमाअत को गैरत दिलाने के लिए गरजती आवाज़ में कहा कि मौलवी इरशाद अहमद साहब! मैं आपके अकाबिर की उनके अक़वाले कुफ़्रीया की बिना पर तकफीर करता हूं। जो लोग उसके मुरीद है, उन सबकी भी। अगर आपमें जुरअत हो तो '**हिफ़्ज़ुल-ईमान**' की कुफ़्री व तौहीन आमेज़ इबारत को बेग़ुबार साबित कर के मौलाना थानवी के सर से कुफ्र का बोझ उठा दीजिए। मगर उस आवाज़ पर ऐसा महसूस हुआ गोया पूरी जमाअत को सांप ने सूंघ लिया है। सब–के–सब गूंगे और बहरे हैं।

चुनांचे भिवंडी के सर बर आवरादा देवबन्दी, जो इस नशिस्त में मौजूद थे, उलमाए देवबन्द की इस बेकसी को देख कर शर्म से पानी–पानी हो कर रह गये। जैसा कि बाज़ ज़राय से हम लोगों को मालूम हुआ कि मौलवी इरशाद अहमद साहब का एक महीने से जायद का तब्लीग़ी प्रोग्राम था मगर

उनकी बेचारगी देखने के बाद तीसरे ही रोज़ उनका बोरिया–बिस्तर गोल कर दिया। भिवंडी की वापसी में बम्बई के देवबन्दीयों को मुंह दिखाए बगैर रफू चक्कर हो गये। मैं नाज़िरीन से माज़रत चाहूंगा कि यह बातें ग़ैर इरादी तौर पर नोके क़लम पर आ गईं। उसकी पूरी तफ़सील आपको **'क़हरे आसमानी'** में मिलेगी। मैं उलमाए देवबन्द की कुफ़ी व गन्दा इबारात का मफ़हूम हाज़िर कर रहा था। उसे आप मुलाहजा फ़रमाएं।

(हवाला के लिए दूसरी किताबें मुलाहज़ा कीजिए)

(३) देवबन्द का यह कहना कि मलकुलमौत और शैतान की वुस्अते इल्म नस्से कुरआ़नी से साबित है। फ़ख्रे आलम स॰ के वुस्अते इल्म की कुरआन मे कोई नस्स नहीं जिसको मान कर शिर्क साबित किया जाए। मआ़ज़अल्लाह!

(४) देवबन्द का यह कहना पैग़म्बरे खुदा स॰ अपनी उम्मत के ऐसे सरदार हैं जैसे किसी गांव का जमीनदार या चौधरी! मआज़अल्लाह!

(५) ऐसे ही देवबन्द का कहना है कि जिसका नाम मुहम्मद या अली–वह किसी चीज का मुख्तार नहीं। मआज़अल्लाह!

(६) देवबन्द[१] का यह कहना कोई भी छोटी–बड़ी मख्लूक़ हो वह अल्लाह की शान के आगे ज़र्रा–ए–नाचीज़ से कमतर और चमार से ज़्यादा ज़लील है। उस में अंबिया और औलिया सभी शामिल हैं। मआज़ल्लाह!

गर्ज़ कि जिस तरह दीवाना किसी का दामन नोचे मआज़अल्लाह! ऐसे ही देवबन्द नामूसे मुस्तफ़ा अलैहित्तहिय : वस्सना से बरसरे पैकार हो गया। कहीं आक़ा–ए–काइनात स॰ पर यह इल्ज़ाम लगाया कि मैं भी एक दिन मर कर मिट्टी में मिलने वाला हूं, और कहीं यह इल्ज़ाम रखा कि मुझे पीठ पीछे की खबर नहीं। किसी किताब में यह लिखा कि रसूले खुदा स॰ को जुबान उर्दू उस वक़्त आई जब उलमा–ए–देवबन्द से मामला हुआ। मआज़अल्लाह! कहीं यह ख़्वाब गढ़ लिया कि रसूले खुदा स॰ उनके पीर व मुर्शिद के मेहमानों का खाना पकाने आए। गोया आक़ाए दोजहां स॰ को अपना बावर्ची बनाया। मआज़अल्लाह!

बहरहाल! जब रसूल दुशमनी का कोढ़ फूटा तो उसके गन्दे व ज़हरीले

(१) उलमा-ए-देवबन्द की चन्द इबारतों का मफ़हूम बतौर मिसाल ज़िक्र कर दिया है अगर बतौर हवाला असल इबारत देखनी हो तो मेरी किताब "खून के आंसू" अंकिशाफ़ात, देवबन्द की खाना तलाशी मुलाहज़ा फरमाइए।

जरासीम उंगलियों से बह कर नोके क़लम पर आए। उसने पूरी मुस्लिम सुसाइटी को परागन्दा कर दिया। जब उलमा–ए–देवबन्द की रसूल दुश्मनी पर उलमा अह्ले–सुन्नत ने मुवाख़ज़ा व मुहासबा किया तो अव्वलन उन्होंने अपनी कुफ्रीयात की तावील शुरू की और वह भी बिल्कुल अटकल–पच्चू। लगे तो तीर नहीं तो तुक्का।

'हिफ़ज़ुल-ईमान' में मौलाना थानवी की कुफ्री इबारत पर किसी ने कहा–ऐसा तशबीह के लिए है। तो किसी ने यह कहा : माने में इतना के है। ग़र्ज़ कि तवीले की लतयाव में जम कर एक दूसरे को काफ़िर बनाते रहे और इल्ज़ाम हमारे सिर है कि हम मुसलमानों को काफ़िर बनाते हैं। मआज़ल्लाह! हालांकि इस फ़र्क़ को वो भी समझते हैं कि काफ़िर बनाना और है काफ़िर बताना और है। अह्लेसुन्नत व जमाअत किसी को काफ़िर बनाते नहीं बल्कि वो लोग जो आक़ा–ए–दोजहाँ रूही फ़िदाह स॰ की शान में तौहीन, गुस्ताख़ी, बेअदबी, दरीदादेहनी, बदज़ुबानी करके काफ़िर हो चुके हैं। इसके बावजूद वो अपनी कुफ़्रियात पर परदा डाल के लोगों से अपने को मुसलमान कहलवाना चाहते हैं बस ऐसे ही मौक़ा पर उलमा–ए–अह्ले सुन्नत अवाम को यह बता देते हैं कि अब ये लोग तौहीने नुबुव्वत की वजह से मुसलमान नहीं रह गए बल्कि काफ़िर हो चुके हैं। उसको काफ़िर बनाना नहीं बल्कि काफ़िर बताना कहा जाता है।

चुनांचे! शहीरे अरब व अजम सय्यदना इमाम अहमद रज़ा फ़ाज़िले बरैलवी रज़ीअल्लाहु तआला अन्हु ने उलमा–ए– देवबंद से सख़्ती से मुतालबा किया और उनकी कुफ़्रियात पर उन्हें मुत्तला करके उससे रूजू और तौबा का हुक्म शरई बताया तो बजाए एहसान मानने के उखड़ गये और इस तौबा में उन्होंने अपनी ज़िल्लत व रुस्वाई समझी। गोया ये गवारा कर लिया कि सैय्यदुलमुर्सलीन स॰ की तौहीन होती रहे मगर अपने नापाक क़लम पर कोई आंच न आए।

जिसका नतीजा ये है कि एक सदी के लगभग हो गए। देवबंद के स्टेज पर यही डरामा खेला जा रहा है।

एक तारीख़ी दस्तावेज़! मुजिद्दे दीन व मिल्लत आरिफ़े हक़ आशिके रसूल हज़रत सय्यदना इमाम अहमद रज़ा फ़ाज़िले बरैलवी रज़ीअल्लाह तआला अन्हु ने अव्वलन बज़रीआ रजिस्ट्री अपने शरई मुतालबात भेजे। इस

मुआखज़े व मुहासबे के नतीजा में कभी उलमा–ए–देवबंद ने चैलेंज मुनाज़रा भी दिया मगर जब मुनाज़रे का वक़्त आया तो इस तरह ग़ायब रहे जैसे गदहे के सिर से सींग।

जिस पर लाहौर का मुनाज़रा शहिदे अद्ल है। सय्यदना इमाम अहमद रज़ा के ख़लफ़े अकबर हज़रत हुज्जतुल–इस्लाम मौलाना हामिद रज़ा ख़ां साहब रज़ीअल्लाह तआला अन्हुमा बसिल्सिला–ए–मुनाज़रा लाहौर पहुँच गये। मगर थानवी साहब का कहीं पता नहीं। अलावा अज़ीं मैदान के रंगरूट खिलाड़यों ने अलग–अलग उन इबारतों की तावील शुरू कर दी। अपनी मनघढ़ंत तावीलात व तशरीहात की बुनियाद पर ख़ुद एक दूसरे को काफ़िर बनाते रहे।

जिसकी तफ़सील मेरी किताब **"खून के आंसू"** में मौजूद है। चुनांचे जब पानी सिर से ऊँचा होता नज़र आया तो इन्तिहाई एहतियात के तहत इमाम अह्ले सुन्नत सैय्यदना इमाम अहमद रज़ा ने उलमा–ए–देवबंद की इन क़ाबिले एतराज़ व लाइक़े मुहासबा इबारात को मक्का मुकर्रमा और मदीना तैय्यबा के उलमा व मशाइख़ की ख़िदमत में पेश करके फ़त्वा तलब किया। उलमा–ए–देवबंद की इन गंदी व कुफ़्री इबारात को देखने के बाद उलमा–ए–हरमैन ने दांत तले उंग्लियां दबायीं। मक्का मुकर्रमा, मदीना तैय्यबा के दारुलइफ़्ता और इल्मी इदारों में गोया मातम बरपा हो गया। उन्हें इसका यक़ीन हो गया कि आक़ाए दो जहां स॰ ने इस फ़िर्क़ा से मुतअल्लिक़ जो पेशगोई फ़रमाई थी उसका आग़ाज़ हो गया।

चुनांचे! उलमा–ए–देवबंद के उन गंदा व कुफ़्री अक़ाइद पर मक्का मुकर्रमा, मदीना तैय्यबा के हनफ़ी, शाफ़ई, मालकी, हंबली– ग़र्ज़ कि यमनी, शामी सभी उलमा ने कुफ़्र का फ़त्वा दिया और साफ़–साफ़ लिख दिया कि ऐसे अक़ीदे वाले काफ़िर, मुरतद, मुलहिद, बेदीन, गुमराह ज़िंदीक़ वग़ैरा–वग़ैरा हैं। उसके बाद अवाम को देवबंद की गुमराही से महफ़ूज़ रखने के लिए उलमा–ए–हरमैन के मजमूआ फ़तावा को **'हस्सामुल-हरमैन'** के नाम शाय कर दिया गया। उसके शाय होते ही ऐवाने देवबंद में ज़लज़ला आ गया और पूरे मुल्क में एक हंगामा खड़ा कर दिया गया। देखो ये तो लोगों को काफ़िर बना रहे हैं। हालांकि काफ़िर बनाया नहीं गया बल्कि जो अपने कुफ़्री अक़वाल की बुन्याद पर काफ़िर हो चुका है इसका कुफ़्र होना बता दिया गया।

उस शोर व हंगामे के बाद अपने मुंह की कालिक धोने के लिए 'अलमुहिन्द' छापा। मगर उसे देख कर अवाम ने उनके मुंह पर थूक दिया। ख़ुद देवबंदी अवाम ने '**अलमुहिन्द**' में उनका दजल व फ़रेब देखने के बाद इज़हारे बेज़ारी करना शुरू कर दिया। जब उलमा–ए–देवबंद ने ये देखा कि अब अवाम हमारे हाथों से निकल जाएंगे, और अरब व अजम हर जगह हमारी बदनामी व रुस्वाई हो रही है तो ड्रामे का एक नया स्टेज सजाया कि उलमा–ए–अह्ले सुन्नत से हमारा इख़्तिलाफ़े मीलाद, क़याम, उर्स और फ़ातिहा का है। इस आवाज़ को फैलाने के लिए जितने भी बंद थे अपने बंधन को तोड़ कर बाहर निकल आए और हशरातुल अर्ज़–की तरह शहर–शहर, गांव–गांव फैल गए। मीलाद बिदअत है; क़याम शिर्क है; फ़ातिहा नाजाइज़ है; उर्स हराम है। गोया एक समझी–बूझी स्कीम और मुकम्मल साज़िश के तहत पूरा देवबंद गले की रगें फुला कर चिल्लाने लगा कि मीलाद बिदअत है; क़याम नाजाइज़ है। उस शोर व ग़ोग़ा का मक़सद सिर्फ़ ये था कि लोग मीलाद व क़याम–जैसे मसाइल में उलझ जाएं और इस बहाने हमारी कुफ़्रियात पर पर्दा पड़ जाए। चुनांचे उस वक़्त से यही होता चला आ रहा है। अब तो हद ये हो गई कि जब पढ़े–लिखे देवबंदी थक हार गये तो एक अनपढ़ गवैए को अपने स्टेज का हीरो बना दिया और उसने भी मौक़ा ग़नीमत जान कर बे पर की उड़ाना शुरू कर दिया।

नए–नए दाव और पैंतरे दिखलाता है। जिस तरह एक मदारी तमाशा दिखाता है और उनके छोटे–बड़े सभी उसका करतब देखने जाते हैं। हालांकि ख़ुद उसे इक़रार है कि पढ़ा–लिखा कुछ नहीं। महज़ एक मिल मज़दूर था; क़व्वाली गाता था; डाकू ख़ानदान का है; डकैती हमारा मौरूसी पेशा है। मगर देवबंद का कहना है कि तुम ग़लीज़ खाओ या हराम पियो मगर हो तो देवबंदी। हमको इससे कुछ बहस नहीं। अब हमें आलिम नहीं बल्कि तुम जैसा सनद–याफ़्ता जाहिल ही दरकार है। हमारे बाज़ उलमा तो अपने मंसब का लिहाज़ करके ढकी–छुपी बातें कहते हैं। मगर तुम तो ठहरे सनद–याफ़्ता जाहिल, इसलिए तुम बरैलियों पर ढेलवास और पथराव करते रहो। अब तो हमारे स्टेज पर ऐसे ही मदारी की ज़रूरत है। जिस का नंगा नाच हमारी कुफ़्रियात पर पर्दा डाल दे। तुम ख़ूब गले की रगें फुला कर सुन्नियों को क़ब्र–पुजवा कहो। काफ़िर, बिदअती, मुश्रिक बनाओ।

उर्स व फ़ातिहा पर कीचड़ उछालो ताकि लोग हमारे मौलाना थानवी की 'हिफ़्ज़ुल-ईमान' की कुफ़्री इबारत भूल जाएं जिस पर हमलोगों को ख़ुद भी शर्मिन्दगी और नदामत है। चूंकि हम इस इबारत का ख़ातिर–ख़ाह जवाब नहीं दे पाते लिहाज़ा अगर ये तरकीब इस्तेमाल की गई तो मुनाज़रा बजाए 'हिफ़्ज़ुल-ईमान' के मीलाद व क़याम पर होने लगेगा।

दोस्तो! ये है देवबंद की शातिराना चाल कि दिन दहाड़े वो बेलौस सादा अवाम की आंखों पर धूल झोंक रहा है। गोया अपनी नमाज़ रोज़े की नुमाइश कर के मीलाद और उर्स के ख़िलाफ़ अलमे बग़ावत बलंद करते हुए अपने कुफ़्रियात को छुपाने की कोशिश कर रहा है। वक़्त का अहम तक़ाज़ा है कि आज पूरी सुन्नी बिरादरी इस ख़तरनाक तहरीक व नापाक साज़िश के खिलाफ़ सफ़े आरा हो जाए और हर हक़–पसंद पर उसे वाज़ेह कर दिया जाए कि देवबंद से हमारा बुंन्यादी इख़्तिलाफ़ मीलाद व क़याम की हदों तक मौकूफ़ नहीं है बल्कि हमारा बुनयादी इख़्तिलाफ़ ये है कि उलमाए देवबंद तौहीने नुबुव्वत के मुज्रिम हैं। जब तक वो अपनी कुफ़्रियात से तौबा नहीं करते उस वक़्त तक हम अहले–सुन्नत का उनसे कोई राबता नहीं हो सकता।

ये मसअला रोटी और पेट का नहीं है और न ही इज़्ज़त व शोहरत का। ये कोई इक़्तदार की जंग नहीं है बल्कि बुनयादी सवाल आक़ाए दो जहां स॰ की वफ़ादारी का है। देवबंद खुले बंद नामूसे मुस्तफ़ा अलैहित्तहियः वस्सना से खेल खेल रहा है और अपने आमाल की ज़ाहरी नुमाइश के तहत वो अपने उलमा की कुफ़्रियात पर पर्दा डालना चाहता है।

लिहाज़ा वक़्त पुकार रहा है कि हमें खुल कर अललएलान कह देना चाहिए कि तुम्हारे रोज़ा नमाज़ की हक़ीकत हम बहुत अच्छी तरह समझ चुके हैं। अब पेशानी के तवील व अरीज़ धट्टे और ज़मीन–बोस होते हुए लम्बे दामन और धुटने से मुसाफ़ा करता हुआ पाज़ामा हमें फ़रेब नहीं दे सकता। तौहीने नुबुव्वत के मुज्रिमाना किरदार ने तुम्हें इस हद तक बरहना कर दिया है कि अब तुम्हें पहचानने में देर नहीं लगती। तुम बज़ाहिर नमाजें पढ़ते हो मगर ऐसी नमाजें जिसके मुतअल्लिक़ तुम्हारा अक़ीदा है कि नमाज़ में रसूलुल्लाह का ख्याल लाने से नमाज़ जाती रहेगी। अलबत्ता अगर गाय, बैल का ख़्याल लाया जाए तो नमाज़ हो जाएगी। ढिठाई का ये आलम है कि बजाए शरमिन्दा होने के ये जवाब देते हो कि नमाज़ ख़ुदा

की इबादत है इसमें अगर रसूलुल्लाह का ख़्याल लाया जाएगा तो अज़मत से और ये शिर्क है। अगर तुम अपनी दलील में सच्चे हो तो इसका जवाब क्या होगा कि मौलाना थानवी के किसी चहेते ने थानवी से पूछा कि अगर आपकी सूरत का तसव्वर कर लूँ तो नमाज़ में जी लगता है। फ़रमाया : जायज़ है "(अलकलामुलहसन मलफ़ूज़ात अशरफ़िया क़िस्त नहुम, पेज १४१)

फ़रमाइए! ये तसव्वर अज़मत के साथ था या थानवी को वो गाय, बैल, बकरी, गदहा समझ कर तसव्वर करता था?

इसी का नाम है एजाज़े नुबुव्वत व इताबे इलाही। ख़ुदा के महबूब से तुमने सरताबी की जिसका नतीजा ये है कि क़दम–क़दम पर तुम्हारा क़लम ठोकरें खा रहा है और तुम्हें आज तक होश नहीं। अगर होश ही होता तो दामने रिसालत से उलझते क्यों? मुझे कहना ये है कि आज वक़्त की सब से बड़ी जिम्मादारी ये है कि उलमा–ए–देवबंद ने अपनी कुफ़्रियात पर परदा डालने के लिए मीलाद व क़्याम का जो बहाना बना रखा है हम अपनी तक़रीर व तहरीर से उनके मंसूबे को ख़ाक में मिला दें। ये काम सख़्त भी है और आसान भी। अगर आप इश्क़े रसूल के जज़्बे में सरशार हैं और इस्लाम का सही मिज़ाज समझ रखा है तो किसी दुश्मने रसूल से रिश्ता व नाता तोड़ने में एक लम्हा की देर न लगेगी।

अगर ख़ून की एक–एक बूंद में वफ़ादारी–ए–मुस्तफ़ा स॰ का जज़्बा है तो आपका ईमान अल्लाह के रसूल के दुशमन से नफ़रत और घिन्न महसूस करेगा। खुदा–न–ख़ासता अगर ईमान के रिश्ते पर ख़ून का रिश्ता ग़ालिब है और दीन से ज़्यादा चचा, मामूं, भाई, भतीजे, बेटी, दामाद चहेते हैं तो यक़ीन कर लीजिए आप ईमान से और ईमान आप से कोसों दूर हो चुका है। फिर कल साक़ी–ए–कौसर स॰ से मैदाने हश्र में पानी न मांगिएगा। उन्हीं रिश्तादारों से तलब कीजिए। वाज़ेह रहे क़ब्र में चचा, भतीजे, बेटी, दामाद काम नहीं आएंगे बल्कि क़ब्र में आक़ा–ए–दो जहां स॰ को पहचानना है। उन्हें पहचानने के बाद ही जन्नत की आसाइश नसीब हो सकेगी। मगर उलमा–ए–देवबंद तो रसूले ख़ुदा स॰ पर ये इल्ज़ाम लगाते हैं कि मैं भी एक दिन मर कर मिट्टी में मिलने वाला हूँ। मआज़ल्लाह! गोया इस लग्व व बेहूदा अक़ीदे के तहत सय्यदुलमुर्सलीन स॰ मआज़ल्लाह! मर कर मिट्टी में मिल गए तो अब ऐसी सूरत में उन्हें क़ब्र में पहचानने का कोई सवाल ही नहीं पैदा होता।

मेरे दोस्तो! अपने इन्हीं जराइम पर देवबंद मीलाद व क़्याम की आड़ ले कर परदा डाल रहा है ताकि इत्तिबा–ए–सुन्न्त के दावे में तौहीने नुबुव्वत का भांडा न फूटे। बहरहाल! अर्ज़ यही करना है कि ख़ून के रिश्ते पर ईमान का रिश्ता ग़ालिब है। चुनांचे अबू–लहब रिश्ते में रसूले ख़ुदा स॰ का चचा है; मक्की है; पड़ोसी है; मगर इसके बावजूद वो मुसलमानों के पावों की ठोकर पर है। सय्यदना बिलाल हब्शी रज़ीअल्लाह अन्हु मक्की नहीं, पड़ोसी नहीं, इसके बावजूद वो मुसलमानों के कलेजे में हैं। मालूम हुआ इस्लाम पहले ख़ून का रिश्ता नहीं देखता बल्कि पहले ईमान का। चुनांचे शेरे ख़ुदा मौला अली रज़ीअल्लाहु तआला अन्ह फ़रमाते हैं दुश्मन तीन तरह के होते हैं –

(१) आपका बराह रास्त दुशमन

(२) आपके दोस्त का दुशमन "गोया वो भी आपका दुशमन है।"

(३) आपके दुशमन का दोस्त "वो भी आपका दुशमन है।"

ख़्याल फ़रमाइए! दुनिया में तो आप हर दुशमन से परहेज़ करते हैं। फिर आपका ईमान ये कैसे गवारा करता है कि जो रसूले ख़ुदा का दुशमन हुआ उससे आप की दोस्ती हो। डरो उस दिन से जब ख़ुदा पूरे क़हर व ग़ज़ब व जलाल से सवाल कर रहा होगा। बदन की एक–एक बोटी कांप रही होगी। ख़ौफ़े इलाही से एक–एक रोवां खड़ा होगा। दिल की धड़कनें बढ़ गई होंगी। ज़बान ख़ुश्क और होंठों पर पपरियाँ होंगी और ख़ुदा–ए–ज़ुल्जलाल पूछ रहा होगा कि जिन लोगों ने मेरे मुस्तफ़ा स॰ को गाँव का चौदरी लिखा, ज़र्रा–ए–नाचीज़ से कमतर लिखा, चमार से ज़्यादा ज़लील लिखा, मेरे महबूब के इल्म पाक के मुतअल्लिक़ ये लिखा कि जो मेरे महबूब का इल्म है ऐसा तो हर जानवर, पागल, मजनून, सभी को हासिल है। उन्हीं से तुम्हारा याराना था। तुम उनकी मेहमाननवाज़ी करते थे उनके हाथ पावं दबाते थे। उन्हीं मक्कारों से दुआ तावीज़ कराते थे। उनकी हां–में–हां मिलाते थे। उनके पीछे नमाज़ें पढ़ते थे। उन्हीं खोखली बेवज़न नमाज़ों को तुम मेरी बारगाह में लेकर आए हो।

ऐ बदनसीबो! तुम सबके सब जहन्नम के ईंधन हो। आज मेरी बारगाह में तुम्हारे खोखले और खोटे सज्दे काम नही आएंगे। क्या तुम्हें याद नहीं!तुम्हारा गुमराह मौलवी तो खुद भी इतना कहता था कि "सही अक़ाइद मदारे नजात हैं।" आमाल मदारे नजात नहीं। (**"उसूले दावत व तबलीग़"**, पेज ६४)

क्या तुमने कुरआन मजीद में ये नहीं पढ़ा था "ऐ ईमान वालो! तुम

रसूले खुदा की आवाज़ पर अपनी आवाज़ें ऊँची मत करो। जिस तरह आपस में एक दूसरे से बोलते हो। इस तरह मेरे महबूब से मत बोलो वरना अगर तुमने इस क़ानून पर अमल न किया तो तुम्हारे सारे आमाल मिटा दिए जाएंगे और तुम्हें शऊर तक न होगा।" (सूरा हुजुरात, पारा २६)

आख़िरश! तुम किस नशे की हालत में थे। मैंने आवाज़ ऊँची करने से रोका और तुमने मेरे महबूब को मुंह भर कर गालियां दीं। इसके बावजूद तुम नमाज़ रोज़ा लेकर मेरे पास आए हो। ऐ बदनसीबो! तुम्हें ग़ैरत नहीं आती। मैं तो अपने प्यारे रसूल को कुरआन में कहीं **'यासीन'** कहा; कहीं **'ताहा'** कहा, **'मुज़्ज़म्मिल'** और कहीं **'मुद्दस्सिर'** कहा। तुमने ऐ दरीदा–दहनो 'गांव का चौधरी' लिखा। क्या अपने मौलवी के साथ भी तुम्हारा यही दस्तूर था। तुम तो अपने मौलविओं के बारे में ये लिखा करते थे – 'मौलाना थानवी के पांव धोकर पीना नजाते उख़रवी का सबब है' **(तज़्किरतुर्रशीद)**। तुम अपने मौलविओं को **''ग़ौसुल-आज़म,** ''मताउल–आलम, **''शैखुल-इस्लाम, ''हकीमुल-उम्मत, ''क़ासिमुल-उलूम''** वग़ैरा लिखते थे। और मेरे प्यारे महबूब के बारे में तुम्हारा ये नापाक अक़ीदा था कि जिसका नाम मुहम्मद या अली वो किसी चीज़ का मुख़्तार नहीं ! तुम्हारे उलमा तो इल्म की दौलत तक़सीम करते वो इस हद तक साहबे अख़्तियार थे मगर मेरा महबूब बिल्कुल बे–अख़्तियार व मजबूर महज़ था।

अपने मौलविओं की तारीफ़ में तुम ज़मीन व आसमान के कुलाबे मिलाते थे कि वो फ़रिश्ता–ए–मुक़र्रब है। अब वो मर कर क़ब्र में नूर–ही–नूर हैं। और तुम मेरे महबूब को 'गावं का ज़मीनदार', 'चौधरी' कह कर बड़े भाई का मरतबा देते थे। 'मर कर मिट्टी में मिलने वाला' कहते थे।

इसके बावजूद तुम्हें अपनी गाय, बैल वाली नमाजों पर गुरूर है!

आज तुम इसके मुस्तहिक़ ही नहीं हो कि मेरा महबूब तुम्हारी सिफ़ारिश करे। ''शफ़ाअत मोमिन के लिए है न कि काफ़िर के लिए''।

लिहाज़ा! तुम पुकारो अपने मौलविओं को जो दीने मोहम्मदी की सूरत मस्ख़ करने के लिए अपने आक़ाओं''अंगरेज़ों'' से छः सौ रुपये माहाना लेकर उनकी सच्ची–पक्की गुलामी का हक़ अदा करते थे। अपनी इन्फ़रादियत बरक़रार रखने के लिए गवर्न्मेन्ट दुश्मनी का नारा भी लगाते।

जब रुपया लेने का वक़्त आता हज़ारों हीला बहाना से रक़म हज़म करने की मकरूह व गंदी सूरतें अख़्तियार करते।

दुशमन से रुपया लेने के क्या माना? ये दो रुख़ी पॉलीसी कैसी?

बुलाओ तुम अपने मौलविओं को जो मुर्ग़ जैसे हलाल को छोड़ कर काला कौवा खाकर मेरे मुख़्लिस और नेक बंदों को लड़ाते थे। कहां हैं वो तुम्हारे दुनियादार पेट पुजारी मौलाना सहिबान! जो मेरे महबूब के महबूब उवैस करनी के फ़ातिहा, हलवा, को मुंह चिढ़ाते लेकिन दीवाली की पूड़ी–कचौड़ी बग़ैर डकार लिए हज़म करके अपनी तोंदों पर हाथ फेरते। ऐ नाबकारो! दुहाई दो अपने उन मौलविओं की जो अपनी जेब की ख़ातिर मीलाद व क़्याम करते लेकिन जब अंगरेज़ों की एजंटी शुरू की तो उसी मीलाद को शिर्क व बिदअत कहना शुरू कर दिया।

सुन लो! आज तुम मेरे महबूब के दामन में पनाह नहीं पा सकते। आज तो तुम्हें उसी को पुकारना होगा जिसको दुनिया–ए–नापायदार में सोते जागते **ला इलाहा इल्लल्लाह अशरफ़ अली रसूलिल्लाह अल्लाहुम्मा सल्ले अला सैयदना नाबीयना मौलाना अशरफ़ अली** कह कर पुकारते थे।

आज!बुलाओ अपने उस बनासपती नबी को और दुहाई दो अपने उस नाख़ुदाओं की जिन्हें तुमने दुनिया में ख़ुदा बना रखा था। तुम्हारे दिल के मंदिर में उन्हीं मौलविओं की मूर्ति थी जिसकी पूजा–पाट में तुमने अपनी ज़िन्दगी गुज़ारी है।

अपने गरीबान में मुंह डाल कर सोचो तुम लड़ते थे बरैलविओं से और गाली देते थे मेरे महबूब को। गोया तुमने दुनिया ही में फ़ैसला लिया था कि मेरा महबूब तुम्हारा नहीं बल्कि बरैलविओं का है।

लिहाज़ा! आज मेरे महबूब के हाथों वही कौसर का जाम पाएंगे जो उनकी वफ़ादारी में तुमसे मुनाज़रे करते थे। तुम्हारी गालियां सुनते थे फिर भी मेरे महबूब के क़दमों से लगे लिपटे रहे। सुन लो! आज का दिन तुम्हारे खुसरान और घाटे का है। आज तुम ख़ुद अपनी आंखों से अपने मौलविओं का इबरतनाक अंजाम देखो। किसी के गले में अंगारों का हार डाला जाएगा; किसी गुस्ताख़ व दरीदा दहन की ज़बान आग की कैंची से काटी जाएगी; किसी बद–ज़ुबान पर सांप और बिच्छू मुसल्लत किए जाएंगे और

उनकी सूरतें मस्ख़ कर दी जाएंगी; पूरे मैदाने महशर में आग के कोड़ों से मारते हुए उन्हें ऐसे हांका जाएगा जैसे दुनिया में जानवरों के रेवड़ हांके जाते थे ताकि पूरा मैदाने क़यामत मेरे प्यारे महबूब के गुस्ताख़ों का अलमनाक अंजाम देख ले (अल्लाह तआला हर शय पर क़ादिर है अगर फ़ैसला हुआ तो क्या अंजाम होगा?)।

ज़ालिमो! तुम खुद सोचो ऐसी नमाज़ें मेरी बारगाह में लाए हो जिसके मुतअल्लिक़ ये तुम्हारा अक़ीदा था कि गाय बैल, गदहे का ख़्याल लाने से तो तुम्हारी नमाज़ हो जाएगी मगर मेरे महबूब के ख़्याल लाने से तुम्हारी नमाज़ जाती रहेगी। क्या ये बैल और गदहे वाली नमाज़ तुम्हें बख़्शवाएगी? दुनिया में तुम्हारी अक्लें मारी गई थीं। **अत्तहीय्यात** में **अस्सलामु अलैक अय्युहन नबी** पढ़ने का हुक्म है। ज़बान से नबी कहोगे और ख़्याल न आएगा? या तुम अत्तहीय्यात ही नहीं पढ़ते थे? अगर पढ़ते थे तो खुद तुम्हारे ही क़ानून से तुम्हारी नमाज़ फ़ासिद हुई या नहीं? मेरी बारगाह में ये हज लेकर आए हो कि काबा पहुंच कर भी बैतुल्लाह में तुम्हारा दिल नहीं लगता था। खुद तुम्हारे उन्हीं मौलवियों ने लिखा है–

फिरें थे काबा में भी पूछते गंगोह का रस्ता
जो रखते अपने सीनों में थे ज़ौक़ व शौक़े इरफ़ानी

(मरसिया–ए–गंगोही)

तुम खुद अपने ज़मीर का फ़ैसला बताओ? क्या ये हज तुम्हारे काम आएगा? तुम्हें तो बजाए काबा के गंगोह जाना चाहिए था। इसके अलावा तुम कलिमा का ढोंग रचा कर मेरे सादालौह बंदों को फ़रेब दिया करते थे। चना और सत्तू की गठरियाँ लाद कर चलते और **ला इला हा इल्लल्लाह** पढ़ाने के बाद ये कहते – 'खुदा का झूठ बोलना मुम्किन है'। अपने और अपने आक़ा के लिए तो ऐब समझते मगर मेरे लिए इसी ऐब को मुम्किन मानते। इसके अलावा मैं अपनी ज़ात व सिफ़ात दोनों में क़दीम हूँ और तुम मेरे लिए मुम्किन साबित करते। इन सबके बावजूद तुम अपने को तौहीद का ठीकेदार समझते थे। तुमने इस तौहीद की आड़ लेकर मेरे महबूब को जी भर कर गालियां दी हैं। क्या ये तुम्हारा वही तरीक़ा नहीं है जो शैतान ने तुम्हें सिखाया था और मुहम्मदुर्रसूलुल्लाह का इक़रार करने के बाद ये

कहते थे कि उनका मरतबा 'गावं के चौधरी' और 'बड़े भाई' ऐसा है। ये कहकर तुम मेरे महबूब से हमसरी का दावा करते।

मैं ने तो कुरआन में ये कहा "**वमा हु व अललग़ैबि बज़नीन। प.३०। रुकू ५** (सूरा तकवीर) यानी मेरा महबूब ग़ैब की बातों के बताने में बख़ील नहीं है। और तुम ये इल्ज़ाम लगाते थे कि उन्हें पीठ पीछे की ख़बर नहीं । मेरे महबूब ने अपने हाथों से ख़ाक फेंकी तो मैं ने कहा **वमा रमै त इज़ रमै त वला किन्नल्लाहा रमा** (सूरा अनफ़ाल पारा ६–स.१६)

मेरे महबूब के हाथ पर सहाबा ने बैअ़त किया तो मैं ने ये कहा कि **यदुल्लाहि फ़ौ क़ ऐदीहिम** (सूरा फ़तह पारा २६, रुकू ६)

यानी उनके हाथों पर अल्लाह का यदे कुदरत (हाथ) है। जो उसकी शान के लाइक़ है। इस क़दर उलू–मरतबत और रफ़अते शान के बावजूद तुमने अपना जैसा बशर समझा और महज़ 'बड़ा भाई', 'ज़मीनदार', 'गांव का चौधरी' कहा। तुम्हारे खीचड़ी–खोर सनद याफ़्ता जाहिल मौलविओं ने बकरी का दूध दूहते और जूं निकालते देखा मगर मकामे सिदर : और अर्शे मुअल्ला से आगे बढ़कर मकान और ला–मकां की सैर करते न देखा। सज्दा–ए–आदम से मुतअल्लिक़ इब्लीसे लईन ने जिस तरह मेरी तौहीद का सहारा लेकर मेरे महबूब की अज़मत का मुन्किर हुआ था बिल्कुल वही रविश तुम्हारे आक़ाओं ने अख़्तियार की। जब मेरे महबूब की अज़मत को घटाना चाहा तो ये कह दिया कि ख़ुदा की कुदरत से बईद नहीं अगर चाहे तो मुहम्मद जैसे करोड़ों मुहम्मद पैदा करे।

तुम्हारे उन्हीं आक़ाओं ने जब अपने किसी चहेते का गुन गाना चाहा तो ये कह दिया –

ख़ुदा के लिए ये तो मुश्किल नहीं
हो आलम का मजमूआ एक फ़र्दे वाहिद

तुम्हारे आक़ाओं ने मेरी तौहीद का एलान किया या इमतनाए नज़ीर का इन्कार किया? वाज़ेह रहे तुम्हारे जराइम की फ़ेहरिस्त बहुत लम्बी है। तुम उम्र भर मेरे महबूब से लड़ते रहे और आज रोज़ा नमाज़ की पोटली में अपने काले करतूत लेकर सामने खड़े हो। तुम उस दीन के पैरू नहीं जो मेरे महबूब ने मेरे बंदों के सपुर्द किया था बल्कि तुम लोग बहुत बड़े ख़ाइन और

बद–दयानत हो। तुम तो उस दीन के पैरू हो जिसे 'देवबंद का नया दीन' कहा जाता है जिसकी बुनयाद मेरे महबूब के बुग़्ज़ व इनाद और दुशमनी पर रखी गई है। इस मक़ाम पर पहुंच कर सरकार आसी की ज़बान में यही कहा जा सकता है –

मिलने की यही राह, न मिलने की यही राह
दुनिया जिसे कहते हैं अजब राह गुज़र है

तीसरा बाब

इख़्तिलाफ़ात की बुनयादी हैसियत

खुदा गवाह भरी अनजुमन में मेरे सिवा
कोई नहीं जो तुम्हारी नज़र को पहचाने

देवबंद और बरैली के बुनयादी इख़्तिलाफ़ात

साहिल के सुकूं से किसे इन्कार है लेकिन
तूफ़ान से लड़ने में मज़ा और ही कुछ है

मौलाना अशरफ़ अली साहब थानवी पूरी दुनिया–ए–देवबंदियत के मुसल्लम रहनुमा, पेशवा और बुज़ुर्ग हैं। 'हिफ़्ज़ुल-ईमान' मौलाना थानवी की एक मारकतुलआरा तसनीफ़ कही जाती है। उसकी हस्ब ज़ैल इबारत मुलाहज़ा फ़रमाइए। जो गुस्ताख़ी, बेअदबी और तौहीने नुबुव्वत की मुंह बोलती मिसाल है। न जाने इस पर कितने मुनाज़रे हुए। उलमाए देवबंद ने एड़ी चोटी का ज़ोर लगाया मगर इस कुफ़्री इबारत को बे–गुबार न साबित कर सके और न साबित कर सकेंगे। खुदा तौबा की तौफ़ीक़ अता फ़रमाए।

आप की ज़ाते मुक़द्दसा पर इल्मे ग़ैब का हुक्म किया जाना अगर बकौल ज़ैद सही हो तो दरयाफ़्त तलब ये अम्र है कि इससे मुराद बाज़ ग़ैब है या कुल।अगर बाज़ उलूमे ग़ैब मुराद हैं तो इस में हुज़ूर की क्या तख़्सीस है? ऐसा इल्मे ग़ैब तो ज़ैद, उमर बल्कि हर सबी व मजनून बल्कि जमी हैवानात व बहाइम के लिए भी हासिल है। ('हिफ़्ज़ुल-ईमान' ७-८)

'हिफ़्ज़ुल-ईमान' की मुनदर्जा बाला इबारत अरबी या अंग्रेज़ी ज़बान में नहीं है जिसके समझने के लिए डिक्शनरी या लुग़त का सहारा लेना पड़े। बहुत ही आम फ़हम और रोज़मर्रा के बोलचाल की सलीस और आसान ज़बान इस्तेमाल की गई है। ईमान और अक़ीदे की रौशनी में इसका

फ़ैसला कीजिए कि आक़ा–ए–काएनात स॰के मुक़ाबिल बच्चे,पागल, हैवानात, चौपाए का लफ़्ज़ इस्तेमाल करना ईमान की अलामत है या कुफ़्र की।

गुफ़्तगू का ये सानवी मरतबा है कि लफ़्ज़ ऐसा माने में तश्बीह के है या इतना के रसूले ख़ुदा स॰ के मुक़ाबिल जानवर, पागल, मजनूं का इस्तेमाल–ये ख़ुद तौहीने नुबुव्वत है जो मोजिबे कुफ़ है! चुनांचे भीमड़ी के मुनाज़रे में जब मैंने मौलवी इरशाद अहमद साहब और मौलवी नूर मुहम्मद साहब टांडवी से कहा कि **'हिफ़्जुल-ईमान'** की कुफ़्री इबारत की बुनयाद पर मैं मौलाना थानवी की और उसके जुम्ला मुरीदीन की भी तकफ़ीर करता हूँ। लिहाज़ा अगर आप लोगों की नज़र में ये सही है तो उसे बेग़ुबार साबित कीजिए। लेकिन किराया पर बुलाए हुए देवबंद के सारे नुमांइन्दे गूंगे, बहरे होकर ख़ामोश बैठे रहे। जिस पर भिवंडी के सर–बरआवरदा देवबंदी हज़रात इन्तहाई सरासीमगी के आलम कें सिर झुकाए ख़ामोशी से अपने रूबाह सिफ़त सूरमाओं का तमाशा देखते रहे। ग़र्ज़ कि **'हिफ़्ज़ुल-ईमान'** की ये वो तौहीन आमेज़ इबारत है जिस पर परदा डालने के लिए हक्क़ानी जैसे लोगों को मैदान में उतारा गया है ताकि वो मीलाद व फ़ातिहा की बहसों में उलझा कर इख़्तिलाफ़ की बुन्यादी कड़ियों को पैवेंदे ख़ाक कर दे। मगर ख़ुदा का शुक्र है कि जब से हिज़्बे मुख़ालिफ़ ने फ़ुरोई मसाइल को हवा देना शुरू किया उस वक़्त से बाज़ उलमा–ए–अह्लेसुन्नत ने बुन्यादी इख़्तिलाफ़ात को अपनी तक़रीर व तहरीर में मरकज़े तवज्जह बना लिया जिससे ख़ातिरख़्वाह फ़ायदा हुआ और दुशमनों का मंसूबा ख़ाक में मिल गया। हम आज पूरी दुनिया–ए–देवबंद को चैलंज करते हैं। अगर तुम में जुरअत व हिम्मत हो तो जिस तरह लाखों के मजमा में हम अपने अक़ाइद का एलान करते हैं तुम भी अवाम की भरी महफ़िल में इसका एलान करो कि रसूले ख़ुदा मआज़ल्लाह! 'गाँव के ज़मींदार' और 'चौधरी'–जैसे हैं। वो मरकर मिट्टी में मिल गए उनका रुत्बा बड़े भाई–जैसा है। उन्हें पीठ पीछे की ख़बर नहीं। उनका इल्म जानवर, पागल–जैसा है। शैतान का इल्म उनके इल्म से ज़्यादा है। मीलादे रसूल कन्हैया के जन्म का सवांग है वग़ैरा ज़ालिक। अगर जुरअत है तो इस चैलंज को क़ुबूल करो। उस वक़्त तुम्हें अन्दाज़ा होगा कि क़ौम तुम्हारा स्वागत करेगी या तुम पर लानत व फिटकार बरसाएगी! **'हिफ़्ज़ुल-ईमान'** पर सैर हासिल गुफ़्तगू **'ख़ून के आंसू'** में की गई है। अगर देखना हो तो **'ख़ून के आंसू'** का

मुतालआ कीजिए। आज की सुहबत में हमें इस इबारत पर कोई गुफ़्तगू करनी नहीं है जिससे घबरा कर उन्होंने उर्स और मीलाद को अपना मौज़ू बनाया है। लिहाज़ा देवबन्दी हज़रत जब उन मसाइल पर गुफ़्तगू करना चाहें तो उनसे यह कह दिया जाए की मीलाद व क़्याम की गुफ़्तगू से पहले मनसबे नुबुव्वत और अज़मते रिसालत पर गुफ़्तगू की जाए। बुनयादी और अहम मसाइल को तय कर लेने के बाद फ़ुरूई मसाइल को मौज़ूए बहस क़रार दिया जाएगा। इतना कह देने के बाद इन्शाअल्लाह तआला उन्हें राहे फ़रार इख़्तियार करने के अलावा और कोई सूरत बन न पड़ेगी।

वरक़ उलटिए और मौलाना गंगोही, मौलाना अंबेठवी की एक ऐसी दिलख़राश इबारत जिसको देख कर शैतान ने भी गोशा–ए–तन्हाई इख़्तियार कर ली होगी कि अब मेरे जानशिनों ने मेरा काम हल्का कर दिया। उसे मुलाहज़ा फ़रमाइये–

मौलाना थानवी की तरह मौलाना रशीद अहमद गंगोही और मौलाना ख़लील अहमद अंबेठवी भी देवबन्दीयों के मुक़तदा व पेशवा हैं। मौलाना अंबेठवी की किताब '**बराहीने क़ातिआ**', जो मौलाना गंगोही की मुसद्दक़ा है, उसकी इन्तिहाई दिलख़राश और क़ल्ब व जिगर को घायल करने वाली कुफ़्री इबारत मुलाहज़ा फ़रमाइये। जो अह्ले–सुन्नत की जलन और बुग़्ज़ व इनाद में शैतान–नवाज़ी की आईनादार है।

शैतान व यह मलकुल-मौत का हाल देख कर इल्मे मुहीत ज़मीन का फ़ख़्रे दो आलम का साबित करना शिर्क नहीं तो कौन-सी नस्से कतई है जिससे एक शिर्क साबित करता है।

'बराहीने-कातिआ' पेज ५१

मीलाद व क़्याम और बाज़ दूसरे फ़ुरूई मसाइल के सुबूत में '**अनवारे सातिआ**' मौलाना अब्दुसमी रामपूरी अलैहि रह॰ की एक मोतमद व मुसतनद किताब है। उसी के रद्द में '**बराहीने क़ातिआ**' लिखी गई जिसकी इबारत आपने मुलाहज़ा फ़रमाई कि देवबन्दी धर्म में शैतान की ज़्यादती–ए–इल्म तो नस्से कुरआनी से साबित है। मगर आक़ाए दो जहां स॰ के ज़्यादती–ए–इल्म के लिए कुरआन में कोई नस्स नहीं। इस पर तमाशा यह कि शैतान के लिए अगर इल्म की ज़्यादती साबित की जाए तो वह फ़िर्क़ा ज़ागिया के धर्म में ऐन ईमान और तौहीद ख़ालिस रहे। लेकिन

अगर महबूबे किर्दिगार अहमदे मुख़्तार रूही फ़िदाह सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम के लिए इल्म की वुसअते ज़्यादती साबित की जाये तो वो शिर्क ख़ालिस बन जाए। तौहीद और शिर्क उलमाए देवबन्द के यह दो ऐसे मीटर हैं जिसको वह मोम की तरह इस्तेमाल करते हैं। जिस तरह मोम हाथों का खिलौना है चाहे उसे गेंद का रूप दीजिए या मुकअ़्ब व शश–पहल वग़ैरा बनाइये। बस ऐसे ही ये हज़रात तौहीद व शिर्क–जैसी बुनयादी मसअले से खेल खेलते हैं। इल्म की जो ज़्यादती शैतान के लिये ऐन तौहीद है, वही ज़्यादती–ए–इल्मे रसूले ख़ुदा के हक़ में शिर्क–जैसा घिनावना पाप क़रार पाएं। आवाज़ दो इन्साफ़ को। इन्साफ़ कहां है? फैसला अह्ले–इल्म व अह्ले नज़र के सुपुर्द है। उसे फ़त्वा–नवेसी कहा जाए या इल्मी ख़्यानत और रसूल दुश्मनी ?

ऐ काश! उलमाए देवबन्द कभी संजीदगी से ग़ौर करते कि रसूले खुदा के साथ उनका जज़्बा–ए–बुग्ज़ व इनाद अपने हुदूद से किस हद तक मुतजाविज़ हो चुका है। कहां सय्यदे आलम का इल्म पाक और कहां शैतान मलऊन का इल्म? अल्लाहु अकबर! यह कैसा ख़तरनाक अन्दाज़े ब्यान है कि शैतान के इल्म की ज़्यादती कुरआन से साबित है। मगर आक़ा–ए–दो जहां सलल्लाहु अलैहि वसल्लम की ज़्यादती कुरआन में कोई नस्स नहीं। अगर ज़्यादती–ए–इल्म साबित की जाए तो शिर्क हो जाए। सच कहा लोगों ने जो जिसका खाता है, उसी का गाता है। वह शैतान का दिया खाते हैं और हम वसीला–ए–मुस्तफ़ा अलैहित्तहीय्यतु वस्सना पाते और खाते हैं। वरक़ उलटिये और इमामुल–वह्हाबिया मौलवी इस्माईल देहलवी की हफ़वात मुलाहज़ा कीजिए –

मौलवी मुहम्मद इस्माईल देहलवी जिन्होंने हिन्दुस्तान में वहहाबियत की दाग़–बेल डाली और मुहम्मद बिन अब्दुलवह्हाब नज्दी की **'किताबुत्तौहीद'** का तर्जमा **'तक़्वीयतुल-ईमान'** के नाम शाय किया उनकी किताब **'सिराते मुस्तक़ीम'** की एक गंदी इबारत मुलाहज़ा कीजिए। जिसके आइने में वह्हाबियत और देवबंदियत की बरहना तस्वीर नज़र आई।

नमाज़ में पीर और उसके मानिंद और बुज़ुर्गों की तरफ़ ख़्याल ले जाना अगरचे जनाबे रिसालत हों कितने ही दर्जो अपने बैल, गदहे के तसव्वर में डूब जाने से बदतर है।

('सिराते मुस्तक़ीम' पेज : ७५)

मेरे अपने ख़याल में ये एक ऐसी ग़ैर मुबहम और वाजेह इबारत है जो किसी तनक़ीद व तब्सरा की मुहताज नहीं है। ये कहना कि गाय, बैल के ख़्याल लाने से नमाज़ हो जाएगी! अलबत्ता रसूले ख़ुदा का ख़्याल लाना गाय, बैल के ख़्याल में डूब जाने से बदरजहा बदतर है।

इस इबारत ने आपके नुमाइशी सज्दों की हक़ीक़त बे–नक़ाब कर दी कि आप किस नमाज़ का प्रचार करते फिर रहे हैं। गली–गली की ख़ाक छानने वालों से अगर दरयाफ़्त किया जाए कि बिस्तर और झोले में क्या है? तो उसका जवाब यह है कि उसमें नमाज़ है। सच है! जिसकी तक़दीस मुसलमानों के दिलों से निकल कर झोले में आ गई हो उसे ऐसा होना चाहिये! ख़ुदा का शुक्र है हमारी नमाज़ें न बिस्तर में बांधी जाती हैं और न ही झोले में रखी जाती हैं बल्कि नमाज़ ख़ुदा का एक फ़रीज़ा है जिसको अपने–अपने वक़्ते मुकर्रा पर अदा किया जाता है। यह ऐसी इबादत है जो **अल्लाहु अकबर** से सलाम तक मेरे मुस्तफ़ा की अदा है। जब यह उनकी अदा है तो यह फ़रीज़ा उनके तसव्वर से क्यों कर ख़ाली रह सकता है?

अलावा अर्ज़ी! **अल्लाहु अकबर** से पहले नीयत की जाती है। "नीयत" भूल और सह्व का नाम नहीं है बल्कि क़सद व इरादा से मुतअल्लिक़ है। हम अपनी नीयत में यह कहते हैं कि पीछे उस इमाम के। लिहाज़ा क़्याम से रुकूअ़, रुकूअ़ से क़्याम और क़्याम से सज्दा – ग़र्ज़ कि इन्तिक़ाले अरकान में **अल्लाहु अकबर** और **समीउल्लाहु लिमन हमीद** : की अवाज़ सुन कर हम उसका यक़ीन रखते हैं कि यह आवाज़ उसी इमाम की है नीयत में हमने जिसका तसव्वर किया था। अब मुझे कह लेने दीजिये आज तो हम अपनी नमाज़ों में अपने मुतएय्यन इमाम का तसव्वर करते हैं मगर ख़लीफ़ा–ए–अव्वल सय्यदना अबू–बक्र सिद्दीक़, अमीरुल–मोमिनीन सय्यदना फ़ारूक़ आज़म, ख़लीफ़तुल–मुस्लिमीन सय्यदना उसमान ग़नी, ख़लीफ़ा–ए–चहारुम सय्यदना अली मुर्तजा व दीगर असहाब किराम व अइम्मा अतहार रज़ि॰ तआला अन्हुम अजमईन के इमाम सय्यदुल मुर्सलीन सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम होते थे।

लिहाज़ा अगर रसूले ख़ुदा का ख़्याल लाना गाय–बैल के ख़्याल में डूब जाने से बदरजहा बदतर है मआज़अल्लाह! तो फ़रमाए कि वह असहाबे किराम ख़ुलफ़ा–ए–राशीदीन और अइम्मा अत्हार जो आक़ा–ए–काइनात की इक़तिदा में नमाज़ें अदा फ़रमाते। उनकी नमाज़ों का क्या हश्र हुआ?

अगर होश व हवास की कोई रमक़ बाक़ी रह गई हो तो उसका सहारा लेकर जवाब दीजिये कि आपके तरकश का तीर बरैलवियों के सीने पर पैवस्त हुआ या उसके निशाने पर असलाफ व अकाबिर का कलेजा है। अगर हमसे बुग्ज़ व इनाद है तो हमें दुख पहुँचाओ, गालियां हमें दो, बुरा हमें कहो। अस्लाफ व अकाबिर की नामूस से खेलने की जसारत न करो। यही वह तुम्हारा जुर्म है जिसे हम कभी माफ़ न कर सकेंगे।

अब एक और नई इबारत पढ़ने के लिए अपने को आमादा व तैयार कर लिजीये जो ख़त्मे नुबुव्वत से मुतअल्लिक़ है।

पंबा कुजा-कुजा नहम तन हमा दाग़-दाग़ शुद

मुसलमान इसे अच्छी तरह जानता है कि मसअला–ए–ख़त्मे नुबुव्वत ज़रूरियाते दीन से है और उसका मुनकर काफ़िर है। अब आज के माहौल में यह कोई नज़री मसअला नहीं रह गया है बल्कि फ़ित्ना–ए–क़ादयानियत के हालिया हंगामे के बाद सवादे आज़म ने उस फ़िर्क़ा को अक्लियत में शुमार करके उनके ताबूत में अपनी हक़गोई इन्साफ–पसन्दी की आखिरी कील ठोंक दी है। लेकिन मौलाना क़ासिम नानोतवी जो दारुल–उलूम देवबन्द के मुअस्सिस व बानी हैं। उन्होंने अपनी शुहरा आफ़ाक तसनीफ़ 'तहज़ीरुन्नास' में मसअला ख़त्मे नुबुव्वत पर ऐसी ज़र्ब लगाई जिससे क़ादयानियत को शह मिली। अभी तक उसकी तबाअत का सिलसिला जारी है। इबारत मुलाहजा कीजिये –

अवाम के ख़्याल में तो रसूल सल्लाहु तआला अलैहि वसल्लम का ख़ातिम होना बायीं माना है कि आप सब में आखिरी नबी हैं। मगर अहले फ़हम पर रौशन कि तक़द्दुम या तअख्खुर ज़मानी में बिज़्ज़ात कुछ फ़ज़ीलत नहीं। फिर मक़ामे मदह में वलाकिन रसूलुल्लाह व ख़तमुन्नबीय्यीन क्योंकर सही हो सकता है? हाँ! अगर उस वस्फ़ को वस्फ़े मदह न कहिये तो ख़ात्मीयत ज़मानी सही हो सकती है।(तहज़ीरुन्नास पेज २-३)

नोट : मसअला ख़त्मे नुबुव्वत ज़रूरियाते दीन से है। इसलिए अइम्मा–ए–शरीअत ने साफ़–साफ़ फरमा दिया जो इस मसअला में सवादे आज़म का मुख़ालिफ़ हो वह ख़ारिज अज़ इस्लाम और काफ़िर है। लेकिन ख़ातमुन्नबीय्यीन का वह मफ़हूम व माना जिस पर इजमा–ए–उम्मत हो

चुका है, उसे अवाम का ख़्याल बता कर उसकी सीसा पिघलाई दीवार में मौलाना क़ासिम नानोतवी ने न सिर्फ़ शिग़ाफ डाल दिया बल्कि क़ादयानियत का दरवाज़ा खोल दिया। यह कितनी ख़तरनाक जसारत व ढिठाई है कि अह्दे रिसालत से तेरह सदी तक की उम्मते मुसलिमा ख़त्मे नुबुव्वत के जिस मफ़हूम व माना पर कुल्लियतन इत्तिफ़ाक़ कर चुकी हो और मुसलमानों से जो मफहूम बतौर तवारुस के मुसतअमिल व मुरव्वज हो उसे खुले बन्द अवाम का ख़्याल कहा जाए। और गाहे बाशिद की कूदक नादां की आड़ लेकर ख़त्म और ख़त्मे नुबुव्वत ज़मानी की दो शक़ क़ायम करके हल मिम मुबारिज़ का चैलेंज किया जाए। उसी पर इकतिफ़ा नहीं बल्कि तवफ़्फ़ुक़ व बरतरी का नशा जब अपने शबाब पर आया तो यहां तक लिख दिया। हवाला मुलाहज़ा कीजिये –

बल्कि अगर बिलफ़र्ज़ बाद ज़माना-ए-नब्वी सल्लाहु अलैहि वसल्लम कोई नबी पैदा हो तो भी ख़ातमीयते मुहम्मदी में कुछ फ़र्क़ न आयेगा। (तहजीरुन्नास-सफ़ा ३३)

यह उर्दू ज़बान की एक बहुत ही सलीस और सादा इबारत है। इसे हल करने के लिए डिक्शनरी चाहिये और न ही लुग़त। गोया मज़कूरा बाला इबारत मसअला ख़त्मे नुबुव्वत को एक खुला हुआ चैलेंज है। खत्मे नुबुव्वत ज़ाती और ख़त्मे नुबुव्वत ज़मानी की तक़सीम पर गुफ़्तगू का सानवी मर्तबा है। सबसे पहला बुनयादी सवाल तो यह होता है कि ख़ातमुन्नबीय्यीन के मुतअय्यना माना को अवाम का ख़्याल बता कर क्या मौलाना क़ासिम नानोतवी ने कुरआन में तहरीफ़ बिलमाना का इरतिकाब नहीं किया? अगर जवाब नफ़ी में है तो तह्रीफ़ बिलमाना की ऐसी वज़ाहत कीजिये जिसकी ज़द में आपका इख़्तिराई माना न आ सके। न यह हुआ है न हो सकेगा! इस मफहूम को सवाल की शक्ल में इस तरह समझा जाए।

मौलाना क़ासिम नानोतवी ने ख़ातमुन्नबीईन की जो तश्रीह की है पूरी तेरह सदी में किसी और ने भी यह माना बताए हैं या नहीं? अगर किसी और ने भी ऐसा लिखा है तो उसका हवाला पेश कीजिये। बिलफ़र्ज़ अगर आपने हवाला भी दे दिया तो उस मफ़हूम को मौलाना नानोतवी का अपनी तरफ़ मन्सूब करना क्या सिरक़ा ना होगा? बहरहाल कोई भी सूरत इख़्तियार कीजिये आप एक ऐसे दलदल में फसें हैं जिससे निकलना मुश्किल है। अगर किसी दूसरी शक़ इख़्तियार कीजिये कि ख़त्मे नुबुव्वत

का यह माना मौलाना नानोतवी के अलावा किसी और ने नहीं बताया तो क्या यह क़बाहत लाज़िम नहीं आयेगी कि ख़त्मे नुबुव्वत के एक मुतवातिर माना के ख़िलाफ़ मौलाना नानोतवी ने एक ऐसा माना बनाया है जो खातमुन्नबीईन के इज्माई माना से मुतसादिम और उस पर ज़र्बकारी की हैसियत रखता है! वाज़ेह रहे कि ख़ातमुन्नबीईन की दलालत ख़त्मे नुबुव्वत ज़मानी पर दलालत मुताबक़ी है। लेकिन मौलाना नानोतवी ने अपनी ज़ेहनी उपज से जो एक नई शक़ पैदा की है उससे आयत की दलालत अपने माना पर दलालत मुतबाक़ी न रह जाएगी। यह इज्मा का इन्कार है। जिसका इन्कार कुफ़्र है। हमें हैरत है कि उलमाए देवबन्द एक तरफ़ तो **'तहज़ीरुन्नास'** की इस कुफ़्री इबारत की ग़लत–सलत तावील करके मौलाना क़ासिम बानी–ए–देवबन्द को बिल्कुल मासूम साबित करने की सई–ए–लाहासिल करते हैं और दूसरी जानिब गुलाम अहमद क़ादयानी और जुम्ला मिर्ज़ाईयों की तक्फ़ीर करके आम मुसलमानों में अपना भरम रखना चाहते हैं।

पाकिसतानी फ़ित्ना–ए–क़ादयानियत के दौर में **'तहज़ीरुन्नास'** कर ढकी छुपी इबारत पर बहुत–से अवाम व ख़वास मुत्तला हुए हत्ता कि ख़ुद देवबंदी मक्तबा–ए–फ़िक्र के एक सहाफ़ी मौलाना उस्मान फ़ारक़लीत ने इस इबारत पर बड़ी ले–दे मचाई। इस इबारत की रौशनी में मौलाना उस्मान फ़ारक़लीत ने उलमा–ए–देवबंद को मिर्ज़ा ही के कटहरे में खड़ा कर दिया। इतने ही पर इक्तफ़ा नहीं बल्कि क़ादयानियों की सफ़ाई में वो यहां तक कह गये कि क़ादयानियत की जड़ बुनयाद तो **'तहज़ीरुन्नास'** की यही इबारत मालूम होती है। जैसा कि उनके मज़मून से समझा जाता है। आख़िरी मरहला पर एक और हवाला मुलाहज़ा फ़रमाइए –

अक्सर आदमी झूठ बोलते हैं। खुदा न बोल सके तो आदमी की कुदरत खुदा की कुदरत से बढ़ जाएगी। रिसाला यक्रोज़ी। पेज १४५

ये हवाला एक मुख़्तसर–सी तम्हीद चाहता है। उसके बग़ैर इस मसअला के समझने से बाज़ नाज़रीन को ज़हमत होगी! इसका ख़ुलासा और हासिल ये है कि इख़्तिलाफ़ात की कड़ियों में एक मसअला इमकाने किज़्बे बारी है। उलमा–ए–देवबंद का कहना है कि बंदा जिस फ़ेल पर क़ादिर हो उस पर खुदा को भी क़ादिर होना चाहिए वरना बंदा की कुदरते ख़ुदा से बढ़ जाएगी। इसी ख़ाना और उसूल और ज़ाब्ते की रौशनी में

मज़कूरा–बाला इबारत लिखी गई है। उसके मुक़ाबिल उलमा–ए–अह्ले सुन्नत का ये कहना है कि किज़्बे बारी तआला मुम्तना व मुहाल है। चुंकि अल्लाह उस ज़ात वाजिबुलवुजूद को कहते हैं जो मुस्तजमा हो जमी सिफ़ाते कमालिया को। यानी परवरदिगार की हर सिफ़त कमाल वाली है। उसकी कोई सिफ़त रज़ील या घटिया दर्जे की नहीं हो सकती।

चे जाए कि झूठ! ये तो एक ऐसा ऐब है कि झूठे को भी झूठा कहा जाए तो लड़ने को तैयार हो जाए। इसी से अंदाज़ा कीजिए की जिस क़ौम का खुदा झूठा होगा वो खुद किस क़दर झूठी होगी। मगर हैरत तो ये है कि उनके खुदा को झूठा न कहे तो बरहम हो जाए और उन्हें झूठा कह दीजिए तो चराग़ पा हो जाएं।

अल्बत्ता रह गया ये सवाल कि बंदा क़ादिर हो, ख़ुदा क़ादिर न हो तो बंदे की कुदरत खुदा से बढ़ जाएगी। ये उस बुनयादी ग़लती का नतीजा है कि कुदरते बारी का सही मफ़हूम ही नहीं समझा गया। बात इतनी–सी है कि महालात तहते कुदरते बारी ही नहीं हैं। मसलन अगर ये स़वाल किया जाए कि खुदा अपने–जैसा खुदा पैदा करने पर क़ादिर है? तो हर दानिश्वर का जवाब यही होगा कि नहीं। हरगिज़ नहीं। इसलिए कि अल्लाह तआला जिसे पैदा फ़रमाएगा वो बेशुमार कुदरतों वाला तो हो सकता है मगर अल्लाह नहीं हो सकता। क्योंकि वो अल्लाह है जिसे किसी ने पैदा न किया हो। अब अल्लाह जिसे भी पैदा फ़रमायेगा उसे मख़लूक़ व बंदा कहा जाएगा, अल्लाह नहीं कहा जा सकता। मालूम हुआ अल्लाह तआला के लिए अपने–जैसा अल्लाह पैदा करना तहते कुदरते बारी ही नहीं। ऐसे ही बंदा अपने गले में फ़ांसी लगा के मर सकता है। मगर खुदा के लिए ये महालात से है। वहां मौत का कोई तसव्वर ही नहीं। हां! अल्लाह और बंदे की कुदरत का उन उमूर में ये फ़र्क़ है कि अल्लाह की कुदरत से मुराद कुदरत अललख़ल्क़ है और बंदे की कुदरत से मुराद कुदरत अललफ़ेल है। यानी खुदा मर तो नहीं सकता मगर मौत का ख़ालिक़ ज़रूर है। बंदा मर सकता है मगर मौत का ख़ालिक़ नहीं है। समझ में आया खुदा क़ादिर तो है मगर उसकी कुदरत बहुत ही अरफ़ा व आला है। इसलिए ये इल्जाम नहीं आता कि बंदे के फ़ेल का सुदूर क्योंकर होता। ये फ़ेल तो उसी ख़ल्क़ के ताबे है।

चुनांचे फ़तावा रिज़्वीया जिल्द अव्वल (१) (१–ग़ालिबन ये बहस पेज–७४५ से शुरू होती है। एडीशन रज़वी किताब घर) में सय्यदना इमाम

अहमद रज़ा फ़ाज़िले बरैलवी रज़िअल्लाहु तआला अन्हु ने **'बाबुल-अक़ाइद'** के ज़ैल में मसअला इम्काने किज़्ब पर गुफ़्तगू फ़रमाते हुए उलमा–ए–देवबंद के इस गंदे अक़ीदे पर तारीज़ात पेश की हैं। यानी सय्यदना इमामुल कबीर हज़रत फ़ाज़िल बरैलवी रज़ीअल्लाहु तआला अन्हु का ये कहना है बंदा जिस चीज़ पर क़ादिर हो उस पर ख़ुदा भी क़ादिर है वरना बंदा की कुदरते खुदा से बढ़ जाएगी। इस ख़ानासाज़ उसूल पर आपने फ़रमाया फिर एक झूठ ही पर क्या मुंहसिर है। बंदा जितनी चीज़ों पर क़ादिर हो उन तमाम चीज़ों पर खुदा को क़ादिर माना जाए। मसलन बंदा खाने–पीने, गाने–बजाने, उछलने–कूदने वग़ैरा–वग़ैरा पर क़ादिर है तो ये सारी बातें खुदा के लिए भी मानी जाएं। मआज़ल्लाह! वरना बंदा की कुदरत खुदा से बढ़ जाएगी।

सय्यदना इमाम अहमद रज़ा फ़ाजिले बरैलवी ने देवबंदी अक़ाइद पर बतौर इल्ज़ाम उन चीजों का जिक्र फ़रमाया। मगर उन शातिरों ने ये ढिंढोरा पीटा कि आला हज़रत फ़ाज़िल बरैलवी ने खुदा को गालियां दी हैं। इस जुर्म में देवबंदी इमामबाड़े का गुजराती ताजिया ही नहीं बल्कि खुद देवबंद का सफ़ीर व मुबल्लिग़ (मौलवी इरशाद अहमद) भी रंगे हाथों पकड़ा गया है जिसकी मुख़्तसर–सी गुफ़्तगू मेरी किताब **'क़हरे आसमानी'** में आ चुकी है।

ये हैं वो बुनयादी इख़्तिलाफ़ात जिनसे देवबंद और बरैली मक्तबा–ए–फ़िक्र के दो स्कूल वुजूद में आए। अब उलमा–ए–देवबंद अपनी उन्हीं ख़ुराफ़ात को छुपाने के लिए सलाम व क़्याम और उर्स व फ़तिहा की आड़ लेकर अपने मुंह की कालिक धोना चाहते हैं। सुन्नियों को चौकन्ना रहना चाहिए। सलाम व क़्याम की बहस में न उलझा जाए बल्कि हमेशा अकाबिरे देवबंद की कुफ़्रियात को मौज़ू–ए–गुफ़्तगू बनाया जाए। इंशाअल्लाह तआला क़दम–क़दम पर कामयाबी होगी। दो मूंहे सांप जिनकी दोग़ली पॉलीसी है, उन्हें पूरी बेदर्दी से पांव की ठोकर से रौंद दिया जाए। इसी में अमान व सलामती है!

शिकस्ते जाम व मीना पर तो इक हंगामा बरपा है
जो मैकश चल बसे हैं उनका मातम क्यों नहीं साक़ी?

❖❖❖

चौथा बाब

उलमा-ए-देवबंद की दुशनाम-तराज़ी
और
बदज़ुबानी व गाली-गलौज के चंद नमूने

कोई उनकी क़बा की बंदिशों को कुछ नहीं कहता
मेरा जौक़े जुनूं ही मुफ़्त में बदनाम होता है

अह्ले सुन्नत व जमाअत पर देवबंदियों के

सब्ब व शतम (गाली-गलौज) और जारेहाना हमले के चंद नमूने
(बग़ैर किसी तब्सरा के)

बक गया जुनूं में क्या-क्या कुछ
कुछ न समझे, ख़ुदा करे कोई

कुत्ते : उन पेट के कुत्तों ने शुरू–शुरू में अकबर के दौर में ख़ूब मज़े किए। (**'आइना-ए-सदाक़त'**– पेज ३३)

काफ़िर : नबी को जो हाज़िर व नाज़िर कहे बिलाशक शरअ़ उसको काफ़िर कहे। (**'जवाहरुल-कुरआन'**–पेज ७३)

बिदअती : लोगों ने हज़ारों बिदअतें निकाली हैं। चंद बिदअतें ये हैं–पुख़्ता क़ब्र बनाना, क़ब्रों पर गुंबद बनाना, धूमधाम से उर्स करना।
(**'तालीमुल-इस्लाम'** हिस्सा ४– पेज १८)

ग़ैर-मुस्लिम : "अगर बरैली में एक भी हक़ीक़ी मुसलमान होता तो आज तमाम बरैली मुसलमान होती।" (**इज़ाफ़ातिल-योमिया** जिल्द ३, पेज १८५)

दज्जाल : उस बरैलवी के इस्तदलाल के बत्लान का जो कि उसने अपने दावे के लिए क़ायम किया है, उससे ज़ाहिर हो गया कि उस दज्जाल के इस्तलतदाल उनके नज़दीक बातिल हैं।" (**'शहाबे साक़िब'** पेज ३)

मुश्रिक : आदमी मज़ारों पर चादरें और ग़िलाफ़ भेजते हैं और उसकी मन्नत मानते हैं। चादरें चढ़ाना मना है और जिस अक़ीदे से लोग ऐसा करते हैं, वो शिर्क हैं। (**'बहिश्ती ज़ेवर'** जिल्द ६, पेज ६२)

कमीना : क्या ऐसी कमीनी हरकतें एक मुसलमान एक आलिमे दीन की शान है। (**'चरागे सुन्नत'** पेज १४७)

यहूदी : कोई क़ादरी, कोई सहरवर्दी, कोई नक़्शबंदी, कोई चिश्ती है "ए कौलहू" यहूद व नसारा की तरह।"

(**तक़्वीयतुल-ईमान, तज़्कीरुल-इख़्वान**, पेज ७६)

कंजरियों से तअल्लुक़ : "उस नापाक की गिरोह से तअल्लुक़ात की उस्तवारी पर भी ग़ौर फ़रमाइए।" (**'बरैली मज़हब'** पेज ६)

मिरज़ाइयों से बुरे : " ये तो मिर्ज़ाइयों से बुरे हैं।"

(**'बरैली मज़हब'** पेज १८)

जंगली जानवर : "आप स॰" के बालों पर जान देने वाले मुसलमान, आपके क़दम के निशान को पूजने वाले मुसलमान, ऐसे मिलेंगे कि अगर शरीअते मोहम्मदिया स॰ की कोई सही बात किसी अल्लाह वाले से सुनते हैं तो इस तरह भाग खड़े होते हैं जिस तरह जंगली जानवर जान छुड़ाकर भाग खड़े होते हैं।" (**'शरीअत या जहालत'** पेज २०६)

यहूदी : "उन यहूदियों के नक्शे कदम पर चलने वाले आज अक्सर मुसलमान ही हैं। इश्क़े रसूल का दावा करने वाले मुसलमान, मोहब्बते रसूल का दम भरने वाले मुसलमान, या रसूलुल्लाह का नारा लगाने वाले मुसलमान। अलख़।" (**'शरीअत या जहालत'** पेज २०६)

जेब भरू पेट भरू : "उन यहूदियों और नसरानियों की तक़लीद आज हिन्दुस्तान में अक्सर जगह जेब भरू और पेट भरू मौलवी कर रहे हैं। ख़ुद भी गुमराह हो रहे हैं और दूसरों को गुमराह कर रहे हैं।"

(**शरीअत या जहालत**, पेज ३३८)

इल्म से कोरे : "ये सारा कुसूर जेब भरू पीर और पेट भरू मौलवियों का है क्योंकि ये लोग इल्म से कोरे हैं।" (**शरीअते या जहालत**, पेज ३५२)

शीआ : "शीईयत की तरह बरैलवीयत भी यूंही समझिए कि जैसे शीईयत की बुन्याद चंद–ग़ैर ज़रूरी बहसें हैं, उसी तरह बरैलवियत की असल अलख़।" (फ़तावा आला हज़रत, पेज मतबूआ मकतबा ज़्याउल–उलूम देवबंद, पेज ५)

माहवारी : "और ये सब उन मुतअद्दिद और मुसतकिल रिसालों के अलावा है जो मुख़्तलिफ़ मक़ामात से माहवारी(१) तौर पर निकलते हैं।

(**'देवबंद से बरैली तक'**, सफ़ा १२)

(१) यह भी शुऊर नहीं कि माहाना लिखा जाए या माहवारी सच है देवबन्दी बोलते हैं मगर समझते नहीं।

दरीदा-दहन : बरैलवी ख़ान साहब किस दरीदा देहनी के साथ उनकी इमामत के मुद्दई हैं।" ('**बरैली का नया दीन**', पेज ३४)

मुजद्दिदुल-बिदआत : "बिलआख़िर मुजद्दिदुल-बिदआत खां साहब बरैलवी ने एक झुरझुरी ली अलख़।" ('**इबनुल वक़्त की ख़ानातलाशी**', पेज ६६)

शैताने लईन की शिरकत : "शैताने लईन की शिर्कत व मईयत में मुबतला कर दिए गए।" (आला हज़रत का हुक़्क़ा शरीफ़)

ये चंद मिसालें इस तरह दी गई हैं गोया खलिहान के चंद दाने। अगर उनकी जुमला खुराफ़ात को इकट्ठा किया जाए तो वो खुद मुस्तक़िलन एक ज़ख़ीम किताब हो जाए। साबिक़ सद्रे देवबंद मौलाना हुसैन अहमद टांडवी ने अपनी किताब '**अश्शहाबुस्साक़िब**' में शहीरे अरब व अजम फ़क़ीह आज़म सय्यदना इमाम अहमद रज़ा फ़ाजिल बरैलवी रज़िअल्लाहु तआला अन्हु को छः सौ चालिस गालियां दी हैं। उसके बावजूद इल्ज़ाम हमारे सिर है कि सुन्नी हज़रात गलीहर होते हैं।

देवबंद की वो मशीनरी बहुत ही फ़अआल व मुतहर्रिक है जो उलमाए अह्ले सुन्नत के ख़िलाफ़ बतौर प्रोपगंडा इस्तेमाल की जा रही है। हद तो ये है कि '**शबिस्तान**' जैसे अफ़सानवी डाइजेस्ट अक्तूबर ७४ ईस्वी के शुमारे में मौलाना उस्मान फ़ारक़लीत ने सय्यदना इमाम अहमद रज़ा पर जोरहाना हमला किया है। मसअला-ए-क़ादयानियत पर गुफ़्तगू करते हुए जनाब ये तअस्सुर देना चाहते हैं कि मुसलमान की तारीफ़ बस ये है जो अपने को मुसलमान कहे, वो मुसलमान है! अफ़सोस ये है कि मौलाना उस्मान फ़ारक़लीत को उलमाए देवबंद की किताबों के मुताला का मौक़ा नहीं मिल सका। अगर किताबों पर नज़र होती तो अपने अकाबिर के क़लम का एहतराम उन्हें इतना बेबाक व जरी न बनाता।

आज से बरसहा बरस पेश्तर उलमा-ए-देवबंद मिर्ज़ा गुलाम अहमद क़ादयानी और मिर्ज़ाइयों की तकफ़ीर कर चुके हैं (**अशद्दुल-अज़ाब**)। अगर किसी का मुसलमान कह देना मुसलमान होने के लिए काफ़ी हो जाए तो ज़रूरियाते दीन और ईमान व अक़ीदे से अमान उठ जाएगा। ज़बान से अपने को मुसलमान कहे और ज़रूरियाते दीन का इन्कार करता रहे। ऐसी सूरत में क़ानून की गिरफ़्त इतनी ढीली हो जाएगी कि लाक़ानूनियत आम हो जाएगी और अनारकी फैली जाएगी।

कहना ये है कि कहां '**शबिस्तान**' जैसा डाइजेस्ट और कहां सय्यदना

इमाम अहमद रज़ा को तंज़न मुजद्दिद बरैलवी कहकर ये साबित किया जाए। गोया वो कुफ़्र की मशीनगन लिए बैठे थे। मौलवी नूर मुहम्मद टांडवी–जैसे गलीहर से लेकर मौलाना उस्मान फ़ारक़लीत जैसा सहाफ़ी बरैलवियत को निशाना बनाने में एक ही सफ़ में खड़े हैं। महसूस हुआ उस हम्माम में सभी नंगे हैं –

वो गाली देते हैं शिकवा करो तो कहते हैं
किसी का ज़िक्र नहीं है, किसी का नाम नहीं

❖❖❖

पांचवां बाब

शाह वसीउल्लाह साहब की 'तौक़ीरुल-उलमा' का तनक़ीदी जायज़ा

खून के छींटे पड़े दामन पे क़ातिल किस तरह
क़त्ल होने में कोई बिस्मिल अगर तड़पा नहीं

एक हक़ीक़त जो झुठलाई न जा सके

मजबूर हूँ कि वक़्त है इफ़्शाए राज़ का
गो मैं ये जानता हूँ कि नाज़ुक ज़माना है

इलाहाबाद – उत्तर प्रदेश का एक तारीख़ी व मरकज़ी शहर है जो न सिर्फ़ गंग व जमन का संगम बल्कि हमेशा मुल्की सियासत और अस्री उलूम का भी संगम रहा। इस तरह के शहरों को मुल्क की मुख़्तलिफ़ पार्टियों ने हमेशा अपना मरकज़े तवज्जह बनाया है।

भला देवबंदियत का साज़िशी ज़ेहन कब चूक सकता था। उसने भी इलाहाबाद को अपने निशाने पर रखा और बरसों थानवी साहब के ख़लीफ़ा शाह वसीउल्लाह साहब का ग़ायबाना परोपेगंडा होता रहा। जब ज़मीन साज़गार हो गई तो उन्हें इलाहाबाद मदऊ किया गया। इस सिलसिले में परोपगंडे के जितने भी अच्छे बुरे तरीक़े हो सकते हैं वो सब के सब हथियार इस्तेमाल किये गये। मसलन–गोरखपुर, कोपा, मऊनाथ भंजन से आने वाले बराह रास्त शाह साहब के पास न जाते बल्कि शहर के दस बीस दरवाज़ों पर जाकर दरयाफ़्त करते। हज़रत अज़ीमुलबरकत हमारे शाह साहब क़िबला कहां तशरीफ़ रखते हैं? जब लोग अपनी लाइल्मी का इज़हार करते तो वो लोग खड़े हो कर शाह साहब का खुत्बा पढ़ते कि वो ऐसे हैं और ऐसे हैं! इन्तिहाई अफ़सोस का मक़ाम है कि आप लोग इतने क़रीब रह कर उनसे फ़ैज़याब नहीं होते। हमें देखिए हम सैकड़ों मील से चले आ रहे हैं। ग़र्ज़ कि इसी तरह मुख़्तलिफ़ दरवाज़ों की फेरी लगा कर परोपगंडा का

हक़ अदा कर लेने के बादशाह साहब की ख़िदमत में पहुंचते। हालांकि उन्हें मालूम होता कि शाह साहब कहां रहते हैं। लेकिन शहर में मुशतहर करने का ये एक मज़बूत हथियार था।

इसी तरह अलाहदा–अलाहदा लोगों से कहते कि हमारे शाह साहब की मजलिस में तशरीफ़ ले चलें और यह इसरार कभी–कभी बाज़ लोगों के लिए हद्दे नागवारी को पहुंच जाता। मगर उन्हें तो इस मज्लिस के नाम पर बद–अक़ीदगी का ज़हरे हलाहल पिलाना था। दिलों से इश्के मुस्तफ़ा का चिराग़ बुझा कर अपनी अक़ीदगी का नया चिराग़ जलाना था। चुनांचे इत्तिबा–ए–सुन्नत और इन्हिदाम शिर्क व बिदअत के नाम पर मस्नद आरास्ता की गई और रसूले करीम का दीवाना सादहलौह सुन्नी मुसलमानों इस आवाज़ पर दीवाना वार चल पड़ा। इस ग़रीब को क्या मालूम था कि यहां नबियों का दामन छुड़ा कर अपने उलमा के क़दमों पर झुकाया जाता है। इसी जज़्बे के तहत तो मौलाना आशिक इलाही मेरठी ने लिखा है कि 'मौलाना थानवी के पांव को धोकर पी लेना नजाते उख़्रवी का सबब है।' आख़िरश! यही न्याज़मंदी सरकारे गौस व सय्यदना ख्वाजा, हजरत हुसैन व हजरत अली रज़ि॰ की बारगाह में क्यों नहीं है? ग़र्ज कि यह परोपगन्डा धीरे–धीरे एक अज़ीम फित्ने का रूप इख़्तियार कर गया। जब सर से ऊंचा होता नज़र आया तो मखदूमे गिरामी आली मरतबत हज़रत मौलाना अलहाज मुहम्मद नईमुल्लाह खां अलैहिरहमः से न देखा गया। खुदाए क़दीर उन की क़ब्रों पर रहमतों के फूल बरसाए और उनकी ज़र्री खिदमात का बेहतरीन सिला अता फरमा कर उनके अमसाल पैदा फरमाए। आमीन।

जब हज़रत मम्दूह ने इलाहाबाद के सुन्नी अवाम को आगाह करने के लिए एक इश्तिहार शाय कराया जिसका खुलासा यह था कि शाह वसीउल्लाह साहब सुन्नी नहीं बल्कि देवबन्दी हैं। बस इस इश्तिहार का निकलना था कि सुन्नी अवाम चौकन्ना हो गये और शाह साहब के यहां की मकामी भीड़–भाड़ छट गई। इसी उलझन व बेक़रारी में **'तौक़ीरुल-उलमा'** नाम का किताब्चा शाय किया गया जिसमें से सिर्फ चौबीस (२४) हवालजात लिये गये हैं ताकि मुनासबत बाक़ी रह जाए। अगले सफहात में आप उनके हवालजात मुलाहजा फरमा कर खुद फ़रमाएं कि जब अवाम में बदज़नी पैदा हुई और अपनी आबरू खतरे में नज़र आई तो **'तौक़ीरुल-उलमा'** लिख कर इज़्ज़त व वक़ार की गिरती हुई दीवार को किस तरह सहारा दिया गया

जो तक़रीबन बत्तीस (३२) सफहात का मज़मून किताब्चा नहीं बल्कि काफिर बनाने की एक फैक्ट्री है। यह मक़ाम था कुछ लिखने का मगर !

क्या कहें मसलहते वक़्त ने पकड़ी है ज़ुबां
वरना ऐ दोस्त! बड़े शोख़े ब्या हैं हम लोग

वाज़ेह रहे देवबन्दियत अपनी किताबों से नहीं फैलती बल्कि यह अपनों में से किसी को मुन्तखब करने, उसी को मरजा–ए–ख़लाइक बनाते हैं और इसकी तारीफ़ व तौसीफ़ में ज़मीन व आसमान के कुलाबे मिला कर उसे माफ़ूकुल बशरीयत का मरतबा देते हैं। अब आप वरक़ उलटईये और काफिरसाज़ फैक्ट्री के कुछ नमूने मुलाहजा फरमाकर अन्दाजा कीजिये कि जो लोग कहते हैं कि 'काफिर को काफिर न कहा जाए' वह खुद काफिर बनाने में कितने शातिर और मश्शाक़ हैं।

काफ़िरगर या बाज़ीगर

तन्क़ीदी जायज़ा

लहू से शहीदों के कूचा तेरा
तमाशा गह करबला हो गया

१. जो शख़्स किसी आलिमे दीन से बग़ैर किसी सबबे जाहिरी के बुग्ज़ व अदावत रखे तो उस पर कुफ्र का अन्देशा है। मैं कहता हूं कि न सिर्फ यह कि अन्देशा है बल्कि यह है कि कुफ्र है। (तौक़ीरुल-उलमा पेज ४)

तब्सरा : मुझे दरयाफ़्त करने दीजिये अगर आलिमे दीन से बुग्ज़ व इनाद रखना कुफ्र है तो जिनके दिलों में आक़ा–ए–दो जहां सल्लाहु अलैहि वसल्लम की अदावत का लावा सुलग रहा है उनके हक़ में आंजनाब का दारुल–इफ़्ता क्या कह रहा? सुन्नी अवाम व ख्वास उलमा–ए–देवबन्द से जो इज्तिनाब व गुरेज़ करते हैं वह आलिमे दीन होने की बुनियाद पर नहीं बल्कि शातिमे नबी और दुश्मने रसूल होने की बुनियाद पर। चूंकि अहले सुन्नत का अमल **अल-हुब्बु फ़िल्लाहि वल-बुग्ज़ु फ़िल्लाह** का आईनादार होता है। हम अल्लाह की मुहब्बत में किसी से मिलते हैं और अल्लाह ही की मुहब्बत में किसी से अलग होते हैं !

२. "महज़ इस वज़ह से इस आलिम से अदावत है कि वह शरीअत की तरवीज करता है। अच्छी बातों का हुक्म करता है और बुरी बातों से लोगों को रोकता है। और जो शख़्स शरीअत का इन्कार करे वह काफ़िर है"। (तौक़ीरुल-उलमा पेज ४)

तब्सरा : शाह वसीउल्लाह साहब ब–गुमाने ख्वेश यह समझते थे कि वह अच्छी बातों को रिवाज देते हैं और बुरी बातों से रोकते हैं। हालांकि ऐसा नहीं था बल्कि वह देवबन्दी कुफ़्रियात और हफ़वात के मुबल्लिग़ थे। उसी वजह से सुन्नी अवाम व ख्वास उनसे कट गये थे और उनकी मज्लिस में जाना तो दरकिनार सूरत भी नहीं देखना चाहते थे। सुन्नियों का यह अमल अल्लाह और उसके रसूल की मुहब्बत में था।

३. और अंबिया अलै॰ की इहानत और इस्तिख़्फ़ाफ का कुफ़्र होना जाहिर है। पस शारिब 'लब कुतराना' जो कि सब अंबिया की सुन्नत है इसकी तक़बीह गोया अंबिया की तक़बीह हुई। क्योंकि यह उनकी सुन्नत है और इसकी तक़बीह कुफ़्र है । (तौक़ीरुल-उलमा पेज ५)

तब्सरा : बजा फ़माया आपने। सुन्नते अंबिया की तौहीन 'कुफ़्र' है। मगर यह तो इरशाद फ़रमाइये कि खुद नबी की तौहीन करना क्या है – 'कुफ़्र' या 'इस्लाम'?

४. लब कुतराना और अमामा के नीचे किनारे को ठुड्डी के नीचे से बाँधना बहुत मायूब मालूम होता है तो यह कहने वाला काफ़िर हो जाएगा। (पेज ५)

तब्सरा : कुफ़्र की मशीनगन अंधाधुंध चल रही है। ख़्वाह उसके निशाने पर किसी का भी कलेजा आए।

५. जो शख़्स बतौर सख़्रिया (मज़ाक़) के मुअल्लिम के साथ तशाबह अख़्तियार करे और हाथ में छड़ी लेकर बच्चों को मारे। गोया मुअल्लिमे कुरआन का मज़ाक उड़ा रहा है तो काफ़िर हो जाएगा। (तौक़ीरुल-उलमा पेज ६)

तब्सरा : किसी की आंख में तिनका देखने वालो! देवबंद की आंख का शहतीर क्यों नहीं देखते? अगर मुअल्लिमे कुरआन की तौहीन कुफ़्र है तो

खुद जिस पर कुरआन नाज़िल हुआ उनकी तौहीन का अंजाम क्या है?

६. लोग शराब की मज्लिस में हैं। एक शख़्स उनमें से ऊंची जगह पर बैठ कर हंसी मज़ाक़ की बातें ब्यान करता है और मुजक्किर (ज़ाकिर और वाइज) की नक़ल उतार रहा है। और खुद भी हंसता है और लोग भी हंस रहे हैं तो ये सब काफ़िर हो जाएंगे। (तौक़ीरुल-उलमा। पेज ६)

तब्सरा : इस सादगी पर कौन न मर जाए ऐ खुदा!

शाह साहब वाइज़ की वाज़ का नक़ल उतारने वाले अगर 'काफ़िर' हो जाएंगे तो जो लोग अपने को रसूले ख़ुदा के मिस्ल कहते हैं उनका अंजाम क्या होगा? वहां वस्फ़ की मुशाबहत है और यहां ज़ात की।

अपने को रसूले ख़ुदा की मिस्ल कहने में लंगड़े–लूले, अंधे, काने, शराबी, जुआरी अस्ली–नक़ली सभी हैं।

७–''मुअल्लिमे कुरआन का इस्तहज़ा कुफ़्र होगा।''

('तौकीरुल-उलमा' पेज ६)

तब्सरा : अब तो देवबंद और थाना भवन से कुफ़् की मशीनगन चल पड़ी है। उसे कौन रोके?

८. ''वाइज़ भी मिनजुम्ला उलमा के हैं और अंबिया अलैहिस्सलाम के नाइब हैं। लिहाज़ा उनकी भी इहानते अंबिया की इहानत होगी। इसलिए कुफ़्र है। (तौक़ीरुल-उलमा पेज ६)

तब्सरा : आप हज़रात से ऐसी ही उम्मीद है कि नायबे रसूल को सिर पर बिठाइये, कलेजा लगाइए मगर रसूले खुदा को बड़ा भाई कह कर उनसे कांधा मिलाइए। खुदा ऐसी समझ दुशमन को भी न दे।

९. कोई शख़्स किसी आलिम की मज्लिस से वापस आया तो दूसरे लोगों ने कहा ये गिरजे वग़ैरह से आ रहा है तो ये भी कुफ़्र है। (पेज ७)

तब्सरा : कहने का नहीं समझने का फ़र्क़ है।

१०. जिस किसी शख़्स ने किसी आलिम को ओवैलम कहकर या किसी अलवी को अलीवी कह कर यानी सेग़ाए-तस्ग़ीर के साथ तहक़ीरन कहा और मक़सूद इसका इसतिख़्फ़ाफ़ है, काफ़िर हो जाएगा। (पेज ७)

तब्सरा : हज़रत नासेह ज़रा ये तो फ़रमाइए कि आलिम का ओवैलम कहने वाला काफ़िर हो जाएगा मगर आक़ा–ए–दो जहां रूही फ़िदा स॰ को अपने–जैसा बशर, बड़ा भाई, मर कर मिट्टी में मिलने वाला और उनके इल्मे पाक को जानवर, पागल ऐसा कहने वाला मुसलमान रहा कि काफ़िर?

११. किसी शख़्स ने किसी आबिद से कहा बैठो जी। बस करो बहुत ज़्यादा इबादत न करो। जन्नत के उस पार निकल जाओगे। या ऐसा न हो कि कहीं जन्नत से आगे निकल जाओ तो काफ़िर हो जाएगा। क्योंकि ये उस आबिद और उसकी इबादत का इस्तहज़ा और मज़ाक़ उड़ाता है। (पेज ७)

तब्सरा! मगर ये तो फ़रमाइए अगर ऐसा नमाज़ी हो कि थानवी साहब के तसव्वर कर लेने से नमाज़ में उसका ज़्यादा जी लगता है अगर उसे कहा जाए तो जनाब का दारुलइफ़्ता क्या बोलता है?

१२. जिस शख्स ने किसी आलिम के बारे में ये कहा कि अगर फ़लां क़िब्ला या जेहते क़िब्ला भी हो जाए तो मैं उनकी जानिब तवज्जह नहीं करूँगा तो काफ़िर हो जाएगा। (पेज ७)

तब्सरा : शाह साहब बस! शाह साहब ही रह गए अपनी शख़्सीयत की पूजा–पाट कराने का। गुलू इस हद तक तजावुज़ हो चुका है कि वो इस हक़ीक़त को भूल गए कि ये तअल्लुक़ बिलमुहाल की मिसाल है। मक़्सदे क़िब्ला या जेहते क़िब्ला की तन्क़ीस नहीं है। बल्कि शाह साहब से इन्तिहाई नफ़रत व बेज़ारी का इज़हार मक़सूद है। अगर खींचताने मान भी लिया जाए तो ये आलिमे दीन के लिए होगा, न कि शातिमे रसूल और आलमे रोज़गार के लिए।

१३. जिस शख़्स ने किसी सालेह शख़्स से ये कहा कि तुमसे मिलना मेरे नज़दीक सअर से मिलना है तो उस पर कुफ़्र का अंदेशा है जबकि उसके और इसके माबैन कोई दीनी या दुन्यवी झगड़ा न हो। (पेज ८)

तब्सरा : सालेह और दीनी झगड़ा की क़ैद ने इबारत को वाजेह और बे–ग़ुबार बना दिया है। मालूम हुआ ग़ैर–सालेह या जिससे दीनी झगड़ा हुआ उसे ऐसा कहने में कोई मुज़ाइक़ा नहीं! चलिए कुछ कहने की सनद तो मिल गई। अब आइंदा शिकायत न कीजिएगा हालांकि हमें कहना नहीं है।

१४. कोई शख़्स ऊंची जगह पर बैठा। आलिम की नक़ल करते हुए और लोग आ-आ कर बतौरे मज़ाक़ और इस्तिहज़ा के इससे मसाइल दरयाफ़्त करते हैं फिर उसको तकिया वग़ैरा से मारते हैं और आपस में ख़ूब हंसते हैं तो इस हरकत की वजह से सब-के-सब काफिर हो जाएंगे। (पेज ११)

तब्सरा : काफ़िरसाज़ी की इस तवील फ़ेहरिस्त के बाद अब ये तो नहीं कह सकते कि काफ़िर को काफ़िर न कहना चाहिए।

बरैली ने रसूले ख़ुदा के मुज्रिमों पर कुफ़्र का शरई फ़त्वा दिया तो एक क्यामत बरपा की गई और जब अपनी आबरू ख़तरे में नज़र आई तो 'तौक़ीरुल-उलमा' लिखकर सारी दुनिया काफ़िर बनाई जा रही है।

१५. कोई आलिम अपनी फ़िक्हः वग़ैरा की किताब किसी शख़्स की दुकान पर रख कर कहीं चला गया। वापस आया और इधर से गुज़रा तो दुकानदार ने कहा कि मौलाना अपनी आरी यहां भूल गए हैं। आलिम ने कहा कि तुम्हारे यहां मैं ने किताब रखी है, आरी तो नहीं रखी। दुकानदार ने कहा : अरे एक ही बात है। बढ़ई आरी से लकड़ी काटता है और लोग इस किताब से लोगों का गला काटते हैं या उनका हक काटते हैं। आलिम ने इमाम फ़ज़ली से शिकायत की। उन्होंने उस सख़्स के क़त्ल किए जाने का हुक्म दिया। इसलिए कि फ़िक्हः की किताब का इस्तिख़्फ़ाफ़ करके वो मुरतद हो गया था और मुरतद की सज़ा क़त्ल है। (पेज ११)

तब्सरा : जिस किताब और जिस आलिम से मुतअल्लिक़ ये हुक्म लगाया गया है वो सोला आना सही है। मगर सवाल तो ये है कि अगर यह कहा जाए कि उलमा–ए–देवबंद अपनी किताबों से ईमान का गला काटते हैं तो उस पर क्या हुक्म है? इस ज़ैल में आंजनाब ने इसका इकरार कर ही लिया कि मुरतद की सज़ा क़त्ल है। ग़नीमत जानिए अह्दे फ़ारूक़ी नहीं वरना जनाब ही का फ़त्वा और जनाब ही का सिर होता ।

१६. जिस शख़्स ने कहा कि शरअ् वगैरा से मुझे कुछ फायदा नहीं और न मेरे नज़दीक वो नाफ़िज़ है तो काफ़िर हो

जाएगा। (तौक़ीरुल-उलमा पेज ११)

तब्सरा : किताब लिखने से पहले ही शाह साहब फ़ैसला कर चुके थे कि आज कुफ़्रसाज़ी फ़ैक्ट्री में न तो बंदूक़ की कारतूस बाक़ी रहेगी और न ही तोप का गोला। बस बम्बार्ड करने से काम ।

१७. किसी के सामने शरीअत का ज़िक्र आया उसको सुनकर उसने क़स्दन और तकल्लुफ़न डकारा या मकरूह किस्म की कोई आवाज निकाली।जैसे किसी चीज को बुरा और मकरूह समझते हुए आदमी मुंह बनाता है और आवाज़ निकालता है और कहा ये है शरअ् तो काफ़िर हो जाएगा। (पेज १२)

तब्सरा : अगर अक़्ले सलीम सलामत होती तो आप आसानी से ये फ़ैसला कर लेते कि जब शरीअत का मक़ाम इतना नाज़ुक है तो मंसबे रिसालत व नुबुव्वत कितना नाज़ुक होगा। इसलिए कहा जाता है इस बारगाह में क़दम फूंक–फूंक के रखना चाहिए।

अदब गाहे अस्त जेरे आस्मां अज़ अर्शे नाज़ुक तर

१८. किसी शख़्स से कहा गया – उठो, जाओ या आओ! चलें मज्लिसे इल्म में। उस पर उसने कहा ये लोग जो बातें ब्यान करते हैं कौन उन पर अमल कर सकता है? या ये कहा कि मुझे इल्मे दीन की मज्लिस से क्या लेना, तो काफ़िर हो जाएगा। (पेज १२)

तब्सरा : जब इलाहाबाद के सुन्नियों पर ज़ाहिर हो गया कि शाह साहब देवबंदी हैं तो उनकी महफ़िल में जाना छोड़ दिया और जाने वालों को रोकना शुरू किया। बस उन्हीं हालात से मुतअस्सिर हो कर 'तौक़ीरुल-उलमा' लिखी गई। 'सुन्नी नादानिस्ता फ़रेब खाता है मगर जान बूझ कर सांप के बिल में उंगली नहीं डालता।

१६-जिस शख़्स ने किसी से कहा कि इल्मे दीन की मज्लिस में न जाओ। अगर तुम गए तो तुम्हारी बीवी हराम हो जाएगी या उस पर तलाक़ पड़ जाएगी तो काफिर हो जाएगा। (पेज १२)

तब्सरा : चूंकि शाह साहब की नाम निहाद दीनी मज्लिस सजाई जाती थी। होशमंद सुन्नी न तो खुद जाते और न ही दूसरे सुन्नियों को जाने देते इसलिए इस फ़त्वा का देना ज़रूरी था।

२०. अगर किसे ने कहा कि एक प्याला सरीद का इल्म से बढ़कर है तो काफ़िर हो जाएगा। (पेज १३)

तब्सरा : जो चाहे आपका हुस्न करिश्मा साज़ करे।

२१. इसी तरह से अगर किसी ने फ़त्वा को ज़मीन पर फेंक दिया बतौर इहानत के तो काफ़िर हो जाएगा। (पेज १३)

तब्सरा :

अल्लाह रे खुद साख़्ता क़ानून का नैरंग
जो बात कहें फ़ख वही बात कहीं नंग

'हिफ़्ज़ुल-ईमान' की कुफ़्री इबारत का फ़त्वा नाक़ाबिले क़ुबूल मगर आपकी कुफ़्र–साज़ फ़ैक्ट्री सारी दुनिया को काफ़िर बना रही है ।

२२. जिस शख़्स ने इहानते शरीअत की या उन मसाइल की जिनकी शरीअत में जरूरत पड़ती है तो काफिर हो जाएगा। (पेज १३)

तब्सरा : शरीअत या शरई मसाइल की तौहीन करने वाला तो काफ़िर हो जाएगा मगर सय्यदुलकौनैन स. की तौहीन करने वाला 'हकीमुल-उम्मत' और 'मुस्लेह-उम्मत' कहा जाएगा ।

जो चाहे आपका हुस्न करिश्मा साज़ करे

२३. जो शख़्स किसी के तयम्मुम करने पर हसा तो काफिर हो जाएगा। (पेज १३)

तब्सरा : बस शाह साहब इतना कहना भूल गए जो मेरी बात न माने वो भी काफ़िर हो जाएगा।

२४-जिस शख़्स ने कहा कि मैं न हलाल जानूं न हराम और उसकी मुराद ये है कि उन दोनों में कुछ फ़र्क नहीं है। या हराम को भी हलाल और हलाल को भी हराम जानता हूं तो काफिर हो जाएगा। (तौक़ीरुल-उलमा पेज १३)

तब्सरा : उसे देवबंदियों के सिवा और कोई नहीं कहता। देवबंदियों का कहना है मुर्ग़ा हो या कौवा, गुर्दा हो या कपूरा, दीवाली की पूड़ी कचौड़ी हो या हिन्दुओं के पियाव का पानी। हम हलाल–हराम कुछ नहीं जानते। हमें तो खाने–पीने से मतलब। इस आइने में शाह साहब को अपनी और अपने साथियों की तस्वीर नज़र आई थी!

नोट : इतनी सरीह और वाज़ेह इबारत के बाद अब इस मौज़ू को तूल

देना नहीं है। नाज़रीन खुद फैसला कर सकते हैं कि आलिम, मुअल्लिमे कुरआन दीनी मज्लिस और तयम्मुम वगैरा की तंकीस करने वाला जब काफिर हो जाता है तो आक़ा–ए–काइनात रूही फ़िदाह स॰ की तौहीन करने वाला क्यों मुसलमान रह सकता है? उसके काफ़िर होने पे जो शुब्हा करे वह खुद काफ़िर हो जाएगा। जिस इंबिसात व इंशराहे सद्र से मज़्कूरा बाला–हज़रात की तकफ़ीर की गई है उसी वुस्अते क़ल्ब और फ़राख़ी–ए–दिल से **'हिफ़्ज़ुल-ईमान'** **'बराहीने-क़ातिआ'** और **'तहज़ीरुन्नास'** के मुसन्निफ़ीन की तकफ़ीर क्यों नहीं की जाती? उन्हें काफ़िर लिखने और कहने में क़लम क्यों टूट जाता है और ज़बान में लुक्नत क्यों नहीं आ जाती है? क्या सिर्फ़ इसलिए कि रसूले खुदा की तौहीन करने वाले आपके अपने हैं और आप (शाह साहब) को वह्हाबी, देवबंदी समझकर नफ़रत काने वाले अजमेर व बहराइच के न्याज़मंदों में थे।

'तौक़ीरुल-उलमा' की इशाअत ने इस उसूल की तौसीक़ कर दी कि मुदाफ़अत हर फ़र्द व जमाअत का अपना आईनी हक़ है। बस इसी तरह बारगाहे रिसालत में उलमा–ए–देवबंद की गुस्ताख़ी व दरीदादेहनी के जवाब में उलमाए अह्ले–सुन्नत की किताबें जारहिय्यत नहीं बल्कि मुदाफ़अत की आइनादार हैं। उन्होंने भी अपना दस्तूरी हक इस्तेमाल किया है जिसको न कोई छीन सकता है और न उस पर कोई पहरा बिठा सकता है। अल्बत्ता उलमाए देवबंद पर ये सवाल हमेशा बाक़ी रहेगा कि जिसे अपने बारे में तौहीन या इब्हामे तौहीन तक को नहीं बरदाश्त कर सकते वो आक़ा–ए–काइनात सय्यदेआलम रूही फ़िदाह स॰ की तौहीन करने वालों के सामने गूंगे बहरे क्यों हो गए हैं ?

उनकी गंदा व कुफ़्री इबारात की बेमहल व लाहासिल तावील व तौजीह से अपनी आक़िबत क्यों बरबाद कर रहे हैं? कम–अज़–कम अवाम से यही कह देते कि ये हमारे पेशवा व बुज़ुर्ग हैं। उस्ताद और पीर हैं, हमें ख़ामोश रहने दो। तुम उन कुफ़्री इबारात की ताईद व हिमायत न करो। अगर ये लोग इतना ही कह देते तो ये फ़ित्ना एक छोटे से हल्क़े में महदूद रह जाता। आम मुसलमानों में इफ़्तराक़ व इंतिशार की ये आग न भड़कती और हमारे इत्तिहाद व इत्तिफ़ाक का शीराज़ा मुंतशिर न होता। मगर यहां का ये हाल है कि खुद भी डूबेंगे और यार को ले डूबेंगे। आजका मुसलमान तबाही व बरबादी के जिस नाज़ुकतरीन दौर से गुज़र रहा है और माहौल **'तक्वीयतुल-ईमान'**

'हिफ़्जुल-ईमान' 'तहज़ीरुन्नास' और **बराहीने-क़ातिआ**–जैसी किताब की इशाअत नहीं चाहता। आजका मुसलमान ऐसा सेहतमंद लिट्रेचर चाहता है जिसमें मुसलमानों के ज़ेहन व फ़िक्र की तत्हीर करके उन्हें ख़ालिस तामीरी ज़ेहन दिया जाए ताकि वो अस्री तक़ाज़ों को पूरा कर सकें और अपनी नस्ल के लिए ऐसी शमा रौशन कर दें जो आंधियों की ज़द में भी सलामत रह सके!

आप खुद फ़ैसला कीजिये। **'हिफ़्जुल-ईमान', 'तहज़ीरुन्नास', 'बराहीने क़ातिआ', 'तक्वीयतुल-ईमान'** –जैसी किताब जो कुफ़्रीयात व ख़ुराफ़ात से भरपूर हैं। खुद 'तक़्वीयतुल–ईमान' के मुसन्निफ़ को इसका एतराफ़ है कि इस किताब की इशाअत के बाद मुसलमानों में झगड़ा होगा। आज उन्हीं किताबों की तबाअत में देवबंद का प्रेस दिन रात मसरूफ़ है। अगर आपके अगलों से ग़लती हो गई तो कम–अज़–कम आप उन ग़लतियों का इरतिकाब न करके अपने ही को महफ़ूज़ कर लें। मैं आप हज़रात से मुन्सिफ़ाना दरयाफ़्त करना चाहता हूँ कि रसूले खुदा को मुसलमानों से 'गाँव का ज़मीन्दार' और 'चौधरी' कहलवाकर दीन व दुनिया की कौन सी सआदत इकट्ठा कर रहे हैं?

ग़रीबान में मुंह डाल कर सोचो तो तौहीदे ख़ालिस के प्रचार का ये कित्ना भद्दा और भोंडा तरीक़ा–ए–कार है कि सय्यदुलमुरसलीन, शफ़ीउलमुज़्नबीन, महबूब किरदिगार अहमदे मुख़्तार रूही फ़िदाह स॰ की इज़्ज़त व हुरमत से खेल खेला जाए और उसे तौहीदे ख़ालिस का नाम दिया जाए। कम–अज़–कम इब्लीसे लईन ही की बुलफुजूली और ना–रवा जसारत से आप हज़रात सबक़ हासिल करते वो भी तो बज़ाहिर तौहीदे खालिस ही का ढोंग रचाना चाहता था। मगर चश्मे ज़दन में रांदा–ए–दरगाह कर दिया गया। हज़रत आदम के इन्कारे सज्दा पर वो नवाज़ा क्यों नहीं गया ?

क्या आप इस हक़ीक़त से इन्कार कर सकते हैं कि इस इन्कार और लब व लेहजा में महबूबे खुदा की तौहीन हो रही थी ? बस इसका जवाब देना था कि जलाल बारी ने अपने गिरफ़्त में लिया। एक लम्हा पहले जो मुअल्लिमुल–मुलूक था अब वही काइनात की बदतरीन मुख़लूक़ हो गया और अब अब्दुल–आबाद तक उस पर लानत बरसाई जाएगी।

फ़ातबिरू या ऊलिल अब्सार।

नसीहत पज़ीरी के लिए ये वाक़िया बहुत काफ़ी है।

तौहीदे ख़ालिस के प्रचार में इब्लीसे लईन की जसारत और ढिठाई वही

न देखिए बल्कि उसी के मुक़ाबिल सुन्नते इलाहिया पर ग़ौर कीजिए कि महबूबे खुदा की तौहीन व तंक़ीस करने वाले का अंजाम क्या होता है? खुदा–ए–वहदहू लाशरीक के इस फ़ैसले ने वाज़ेह कर दिया कि जिस तरह ग़ैरते बारी ये गवारा नहीं करती कि उसकी ज़ात व सिफ़ात में किसी दूसरे को शरीक किया जाए इसी तरह उसकी महबूब–नवाज़ी व बंदा–परवरी भी ये पसंद नहीं करती कि उसके महबूबों की बारगाह में अकड़फूं बघारी जाए। जब किसी गुस्ताख़ व दरीदा दहन ने ऐसी हिमाक़त की है तो जलाले बारी ने ऐसे रूसियाह को हमेशा के लिए मुजिरमों के कटहरे में खड़ा कर दिया है। चुनांचे कोहे सफ़ा पर पैग़म्बरे खुदा स॰ ने जब कुफ़्फ़ारे मक्का को इस्लाम की दावत दी तो अबूलहब ने ग़ैज़ व ग़ज़ब में ये कहा था । **तब्बल क साइरल-यौमुल-हाज़ा जमअ्तना।** जिसका तरजमा ये है : तू बरबाद हो जा। क्या हमें इसी बात के लिए जमा किया था'? बस इसी बुनियाद पर सूरा **तब्बत यदा** नाज़िल हुई। चुनांचे सहीहैन में इसकी शाने नुज़ूल यही बताई गई है? खुदाए क़दीर फ़रमाता है। **तब्बत यदा अबी लहबिव्वतब्ब** यानी अबू लहब के हाथ टूट जाएं और वो बरबाद हो जाए। ग़ौर करने का मक़ाम है अबूलहब ने बस एक ही मरतबा कहा था मगर खुदा–ए–ज़ुल्जलाल ने ऐसी सूरा नाज़िल फ़रमाई कि रोज़ाना लाख–हा–लाख मुसलमान सूरा **तब्बत यदा** की तिलावत कर के अबूलहब की हलाकत व बरबादी की बद–दुआ करता है। इसी ज़ैल में सुन्नते इलाहिया की याद ताज़ा करता है कि अगर उसके महबूब की किसी ज़ालिम रूसियाह बदबातिन ने एक बार बदगोई की है तो कुदरत ने करोड़ों मुसलमानों को उस पर मुसल्लत कर दिया है। इसके दर्दनाक अज़ाब को दुहराते रहें ताकि अल्लाह के बंदे इससे इबरत व मोइज़त हासिल कर सकें। मैं ये भी दरयाफ़्त करना चाहता हूँ कि देवबंद ने कभी उसके ख़िलाफ़ सदा–ए–एहतेजाज बलंद की कि अबूलहब ने तो एक ही बार कहा अब रोज़ाना सूरा **तब्बत यदा** क्यों पढ़ी जा रही है ? यहीं से एक ज़ाब्ता समझ में आ गया कि जब महबूब को कोई बुरा कहता है तो जवाब महबूब नहीं मुहिब्ब देता है। चुनांचे कुरआने हकीम में इसकी एक दो नहीं मुतअद्दिद नज़ीर और मिसालें हैं। मसलन अगर किसी दरीदा दहन ने सरवरे कौनेन स॰ को मआज़ल्लाह! मजनून, कह दिया तो उसके जवाब में खुदावंद कुद्दूस ने फ़रमाया। **नून। वलक़लमि वमा यस्तुरून। मा अन त बिनिमति रब्बि क बिमजनून।**

रब ने ये इशारा फ़रमा कर अपने महबूब को तसल्ली दी। ऐसे ही सूरा **वज़्जुहा**, सूरा **कौसर** वग़ैरा बहुत–सी सूरतें व आयात सरवरे कौनेन स॰ की तमानियत व तस्कीन के लिए नाज़िल की गई। इस मकाम पर अगर फ़िक्रे बुलंद व ज़ेहन रसा से काम लिया जाए तो ये दस्तूर समझ में आता है कि अहदे रिसालत नुज़ूले वह्य का दौर था। उस वक़्त अगर किसी दरीदा दहन ने सय्यदे आलम स॰ की बारगाह में गुस्ताख़ी की तो खुदा–ए–वहदहू लाशरीक ने जवाब देकर दावेदाराने मुहब्बत व आशिक़ाने मुस्तफ़ा अलैहित्तहीयः वस्सना की शाहराह मुतअय्यन करा दी कि सिल्सिला–नुजूले वह्य ख़त्म होने के बाद अगर कोई मेरे महबूब की बारगाह में गुस्ताख़ी करे तो उस अहद के खुश–अक़ीदा मुसलमानों की ज़िम्मादारी है कि वो ज़बान का जवाब ज़बान और क़लम का जवाब क़लम से देकर सुन्नते इलाहिया की यादगार ताज़ा करें और शातिमाने मुस्तफ़ा स॰ की जुरअत व बेबाकी को इपनी ग़ैरते मुहब्बत के हक़ में खुला हुआ चैलंज तसव्वर करें। इसलिए आज के दौर में अगर उलमा–ए–अहलेसुन्नत, उलमा–ए–देवबंद की तौहीन आमेज़ इबारात का जवाब दे रहे हैं तो उन पर इल्ज़ामे फ़साद नहीं क्योंकि वो न सिर्फ़ मुदाफ़अत कर रहे हैं बल्कि सन्नते इलाहिया की अदाएगी की भी सआदत हासिल कर रहे हैं ।

उलमा–ए–देवबंद से हमारी आख़िरी गुजारिश है कि अगर उनकी क़ौम व जमाअत में कुछ ऐसे अफ़राद हों जो अंबिया और रुसुल को, इलाह (माबूद)का दरजा देते हों तो उनकी तत्हीर ज़ेहन के लिए ऐसे मुफ़ीद लिट्रेचर शाय किये जाएं जिसमें तसव्वरे इलाह के ख़द्द–व ख़ाल कुछ इस तरह उजागर किये जाएं कि तौहीने नुबुव्वत का शाइबा तक न आने पाए।

चे जाए कि आक़ाए दो जहां स॰ के इल्मे मुबारक को जानवर, पागल, मजनूं ऐसा कह के अपनी आक़बत तो बरबाद की जाए। दूसरों को अपना हम–अक़ीदा बना कर उन्हें भी जहन्नम का ईंधन बनाया जाए। मुसलमानों को शराब और जूआ से बचाना, सिनेमा और दूसरी बुराइओं से दूर रखना उन्हें नमाज़ी और परहेज़गार बनाना–ये सब अच्छे–भले काम हैं। मगर ये तो फ़रमाइए कि मुसलमानों से ये कहलवाना कि नमाज़ में रसूले खुदा के ख़्याल लाने से नमाज़ जाती रहेगी। सरवरे कौनेन मरकर मिट्टी में मिल गए। उनका इल्म जानवर, पागल ऐसा है, वो ज़मीनदार और चौधरी जैसे हैं। उसमें मुसलमानों के साथ कौन–सी ख़ैरख़्वाही है! वक़्त के जो तक़ाज़े

हैं उसे तो आप पूरा नहीं करते। अल्बत्ता अपने मकरूह व गंदा और कुफ़्री इबारत की इशाअत से मुसलमानों का शीराज़ा मुंतशिर कर रहे हैं। ख़ुदारा! मुसलमानों पर तर्स खाइए और अंबिया व औलिया की बारगाह के जो न्याज़मंद हैं अपनी ख़ानासाज़ **'तक़्वीयतुल-ईमानी'** तौहीद का ग़लत सहारा लेकर उनके ईमान व अक़ीदे पर दिन दहाड़े डाका न डालिए!

हम इस मुल्क में एक खुली हुई किताब हैं। अजमेर व बहराइच हम रात की तारीकी नहीं बल्कि दिन के उजाले में जाते हैं।

मुझे रोक सकता है कोई तो रोके
कि छुप कर नहीं बरमला जा रहा हूँ

अब **'तौक़ीरुल-उलमा'** की रौशनी में आपको अपना आख़री फ़ैसला करना है कि काफ़िर को भी काफ़िर न कहा जाए या काफ़िर को काफ़िर ही कहा जाए ?

अल्लाह रे बुतों की तलव्वुन मिज़ाजियां
हां हां! घड़ी में है तो घड़ी में नहीं नहीं

छठा बाब

उलमा-ए-देवबंद की चंद मुंतशिर व अहम इबारात पर एक ताइराना निगाह

जिनों को ख़ुद नहीं मालूम अपनी कारफ़रमाई
हुआ क्या आस्तानों को ग़रेबानों पे क्या गुज़री

बरैली वालों के पीछे देवबंदियों की नमाज़ हो जाती है

हवाला मुलाहज़ा फ़रमाए :

''एक शख़्स ने ''मौलाना थानवी'' से पूछा कि हम बरैली वालों के पीछे नमाज़ पढ़ें तो नमाज़ हो जाएगी या नहीं? फ़रमाया: ''हां! ''हम उनको काफ़िर नहीं कहते अगरचे वो हमें कहते हैं।'' (मजालिसुल-हिकमत। स० २१५)

अवाज़ दो इरशाद को ! इरशाद कहां है ?

देवबंद के मुबल्लिग़ व कमीशन एजेंट मौलाना इरशाद अहमद जिन्हें शोहरत–पसंदी के जज़्बे ने अक़्ल व ख़िर्द का दीवालिया बना दिया। उन्हें चाहिए कि वो इस हक़ बोलती इबारत को हिर्ज़े–जां बनाएं और अपनी यावागोई से बाज़ आएं। हो सके तो देवबंद के दर्वाज़े पर उसे कुंदा करा दें।

मालूम हुआ बरैलवियों के पीछे देवबंदियों की नमाज़ हो जाती है। मगर देवबंदियों के पीछे बरैलवियों की नमाज़ नहीं होती। लिहाज़ा मसअला–ए–इमामत में जहां कहीं भी इख़्तिलाफ़ हो वहां बरैली इमाम मुतएय्यन किया जाए। चूंकि दोनों की नमाज़ उसके पीछे हो जाएगी। इख़्तिलाफ़ ख़त्म करने का मुनासिब और मुंसिफ़ाना तरीक़ा यही है।

वह्हाबी बे-अदब को कहते हैं

हवाला मुलाहज़ा फ़रमाइए :

''थानवी साहब : बिदअती के मआनी हैं बा-अदब बे-ईमान और वह्हाबी के मआनी हैं बे-अदब बा-ईमान।

(इफ़ाज़ातुलयौमिया, जिल्द ४ पेज ८१ व जिल्द सोम। पेज १६६)

पता नहीं क़लम फिसल गया, ज़ुबान फिसल गई। कुछ भी हो, बोले हैं मगर समझे नहीं! अपने और अपने साथियों के बारे में उसका तो इक़रार कर ही लिया कि वह्हाबी 'बे–अदब' को कहते हैं। इसका फ़ैसला तो आसानी से किया जा सकता है कि ईमान व अदब में चोली दामन का रिश्ता है या 'बे–अदबी' से ईमान का बेजोड़ पैवंद है। अब आने वाला हवाला मुलाहज़ा फ़रमाइए जिससे मौलाना थानवी की सरिश्त व फ़ितरत का सही अंदाज़ा होगा।

सारी दुनिया को वह्हाबी बनाने का प्रोग्राम

हवाला मुलाहज़ा फ़रमाइए :

थानवी साहब : ''अगर मेरे पास दस हज़ार रुपया हो सबकी तंख़्वाह कर दूँ फिर खुद ही सब वह्हाबी बन जाएं।''

('इफ़ाज़ातुल-यौमिया' जिल्द सोम पेज ६७)

अभी गुज़िश्ता हवाला में आप हज़रात ने मुलाहज़ा फ़रमाया कि मौलाना थानवी बे–अदब को वह्हाबी कहते हैं। अब इस ज़ौक़ को दाद दीजिए कि मौलाना थानवी को बे–अदबी इस हद तक महबूब व पसंदीदा है कि तंख़्वाह दे कर सारी दुनिया को वह्हाबी बनाना चाहते थे। उनकी ज़िन्दगी में ये आरज़ू तो न पूरी हो सकी मगर मौलवी इलयास कांधलवी बानी–ए–'तबलीग़ी जमाअत' ने इससे फ़ाइदा उठाया। ओमरा की तंख़्वाहें मुतएय्यन करके पूरे मुल्क में इसका जाल बिछा दिया। रियाकारी का आलम ये है कि चना, सत्तू साथ में मगर सब–के–सब तंखाहदार मुलाज़िम हैं। गोया बे–अदब बनाने की एक मुकम्मल साज़िश का दूसरा नाम 'तब्लीग़ी जमाअत' है।

सही अक़ाइद मदारे नजात हैं

हवाला मुलाहज़ा फ़रमाइए :

शाह अब्दुर्रहीम देहलवी : ''सही अक़ाइद मदारे नजात हैं। आमाल मदारे नजात नहीं।'' ('उसूल दावत व तब्लीग़' पेज ६४)

शाह अब्दुर्रहीम देहलवी जो तब्लीग़ी जमाअत के सरगरम रुक्न रह चुके हैं उनका इरशाद आपने मुलाहज़ा फ़रमाया। अब मौलाना थानवी के ख़लीफ़ा शाह वसीउल्लाह साहब फ़तहपुरी से मुलाक़ात कीजिए –

शाह वसीउल्लह साहब ख़लीफ़ा थानवी एक सुर्ख़ी : ''अमल से ज़्यादा ईमान का इहतमाम चाहिए। ''चुनांचे अमल में बिलफ़र्ज़ अगर ख़ामी और कमी भी रह जाए तो काम चल जाएगा। लेकिन ईमान की कमी तो नहीं पूरी की जा सकती! अलख।'' (तौक़ीरुल-उलमा पेज १८)

मुंदर्जा बाला हवालजात की रौशनी में तब्लीगी जमाअत से मुतालबा किया जाए कि जब आपके अकाबिर का ये कहना है अमल से ज़्यादा ईमान का इहतमाम किया जाए और सही अक़ाइद मदारे नजात हैं! आमाल मदारे नजात नहीं तो आप हज़रात ईमान व अक़ीदे की तब्लीग़ क्यों नहीं फ़रमाते?

कुछ तो है जिसकी परदादारी है

क्या ईमान व अक़ीदे की तलकीन सिर्फ़ दिल्ली के चिल्लाख़ाने में होती है? अब हमारे अवाम की जिम्मेदारी है कि जहां कहीं तब्लीग़ी वफ़्द मिल जाए उन्हें वसीउल्लाह साहब फ़तहपुरी और शाह अब्दुर्रहीम साहब देहलवी की किताब का हवाला देकर उनसे ईमान व अक़ीदे की तशरीह कराई जाए। चूंकि ये दोनों हज़रात मौलवी इलयास कांधलवी ही के हम मशरब व हम–मस्लक हैं। मुल्क के तमाम ही मुसलमानों को ग़ौर करना चाहिए कि आख़िरश तब्लीग़ी जमाअत अपने दौरे में ईमान व अक़ीदे की तशरीह क्यों नहीं करती? ईमान व अकीदे के लिऐ दिल्ली का फ़र्ज़ी चिल्लाख़ाना ही क्यों मुतएय्यन किया गया है।

काफ़िर को काफ़िर ही कहा जाए

कुफ़्र टूटा खुदा खुदा कर के

हवाला मुलाहज़ा फ़रमाइए -

मौलाना रशीद अहमद गंगोही : ''मगर भाई शरीअत का हुक्म है कि काफ़िर को काफ़िर कहो। इसलिए बंदा को तामील में उज़्र क्या? जिस पर अलामते कुफ़्र देखेंगे हम तो उसे काफ़िर समझेंगे और काफ़िर ही कहेंगे।'' (तज़्किरतुर्रशीद हिस्सा दोम पेज १६६)

दूसरा हवाला मुलाहज़ा फ़रमाइए –

मौलाना मुर्तज़ा हसन दरभंगी : ''जो काफ़िर को काफ़िर न कहे वो खुद काफ़िर है।'' अशद्दुल-अज़ाब पेज १३

उलमा–ए–देवबंद के स्टेज से अकसर ये बात कही जाती है कि काफ़िर को काफ़िर न कहो। इस बेतुके एलान के हस्ब ज़ैल चंद फ़वाइद हैं –

१. इस एलान के बाद अवाम को ये फ़रेब देना चाहते हैं कि हम तो खुले काफ़िर को काफ़िर नहीं कहते। मगर सुन्नी हज़रात हम लम्बी दाढ़ी वालों को भी काफ़िर कहते हैं। गोया भीगी बिल्ली बन कर वो अपने हक़ में रायआम्मा को हम्वार करना चाहते हैं। मगर खुदा का शुक्र है कि होशमंद व दानिश्वर सुन्नियों ने लम्बी दाढ़ी के साथ उनके दिल का चोर भी पकड़ लिया है। इसलिए अब उनका दाव पेच नहीं चल पाता। अलावा अज़ीं उस एलान से उलमा–ए–देवबंद दूसरा फ़ाइदा ये उठाना चाहते हैं।

२. कि अगर अवामी ज़ेहन ने इस ज़ाब्ते को कुबूल कर लिया कि काफ़िर को भी काफ़िर नहीं कहना चाहिए तो देवबंदी जी भर के तौहीने नुबुव्वत भी करता रहेगा मगर बईहमा उसे मुसलमान ही कहा जाएगा। तंक़ीसे रिसालत और तौहीने नुबुव्वत को आम करने का ये एक चोर दरवाज़ा है। खुदाए क़दीर तमाम मुसलमान को इस फ़ित्ने से महफ़ूज़ व मामून रखे। आमीन

❖❖❖

सैय्यदना इमाम अहमद रज़ा आशिक़े रसूल थे

मत सहल हमें जानो फिरता है फ़लक बरसों
तब ख़ाक के परदे से इंसान निकलता है

हवाला मुलाहज़ा फ़रमाइए –

मौलाना थानवी : *"मुम्किन है उन "मौलाना अहमद रज़ा ख़ां" की मुख़ालफ़त का सबब वाक़ई हुब्बे रसूल ही हो।"*

('अशरफुस्सवानेह' हिस्सा अव्वल पेज १२६)

रगड़ा–झगड़ा करते–करते किसी नेक साअत में दिल का दरवाज़ा खुल गया और एक हक़ बात ज़बान पर आ ही गई। गोया ये भी आला हज़रत रज़ीअल्लाहु अन्हु की एक खुली हुई करामत है। मुंदरजा बाला इबारत अपनी भरपूर तवानाइयों से पुकार रही है कि फ़ाज़िले बरैलवी का इख़्तिलाफ़ किसी इक़्तिदार या मुआसिराना ख़लिश के तहत नहीं था बल्कि उलमा–ए–देवबंद की तौहीन आमेज़ इबारत इतनी ही दिल आज़ार थी कि उस पर किसी आशिक़े रसूल का मुहासबा व मुवाख़ज़ा एक अम्र नागुज़ेर था।

चुनांचे यही वो दाईया है जिसने मौलाना थानवी को ये कहने पर मजबूर किया कि हो सकता है मौलाना अहमद रज़ा खां साहब की मुख़ालफ़त का सबब हुब्बे रसूल ही हो। इस हक़ बोलती इबारत से देवबंदियों को सबक़ हासिल करना चाहिए कि खुद मौलाना थानवी सय्यदना इमाम अहमद रज़ा को मुहिब्बे रसूल समझते थे।

❖❖❖

मौलाना मोहम्मद ज़करिया और मौलाना मंजूर नोमानी वह्हाबी हैं

चमन में कांटे भी रखते हैं इक मक़ाम ऐ दोस्त
फ़क़त गुलों से ही गुलशन की आबरू तो नहीं

हवाला मुलाहज़ा फ़रमाइए :

मौलाना मंजूर नोमानी : "इसी के साथ हमने ये भी अर्ज़ किया कि और अगर ऐसा न हो तो थोड़े दिनों बाद ये सारा मज्मा मुंतशिर हो जाएगा और खुद अपने बारे में भी सफ़ाई अर्ज़ करते हैं कि हम बड़े सख़्त वह्हाबी हैं। हमारे लिए इस बात में ख़ास कशिश नहीं होगी कि यहां हजरत की क़ब्र मुबारक है, ये मस्जिद जिसमें हज़रत नमाज़ पढ़ा करते थे और ये हुजरा है जिसमें हज़रत रहा करते थे।" (सवानेह हज़रत मौलाना मुहम्मद यूसुफ़ देहलवी पेज १६१–१६२)

मौलवी इलयास कांधलवी के मर्ज़ुलमौत में मौलाना मंजूर नोमानी की जो गुफ़्तगू मौलाना ज़करिया से हुई थी इसमें नोमानी साहब ने ये कहा था। अब मौलाना ज़करिया का जवाब मुलाहज़ा फ़रमाइए –

हवाला (२)

मौलाना मो॰ ज़करीया : "मौलवी साहब! मैं खुद तुम से बड़ा वह्हाबी हूँ। तुम्हें मशवरा दूँगा कि हज़रत चचाजान की क़ब्र और हज़रत के हुजरा के दर व दीवार की वजह से यहाँ आने की कोई ज़रूरत नहीं।"

(सवानेह हज़रत मौलाना मोहम्मद यूसुफ़ पेज १६३)

मौलाना ज़करीया और मौलाना मंज़ूर नोमानी तब्लीग़ियों के सरख़ीले जमाअत और मुक़्तदा व पेशवा हैं। लिहाज़ा जहां कहीं भी तब्लीग़ी जमाअत मिल जाए तो उन हवालजात की रौशनी में आप उनसे दर्याफ़्त फ़रमायें कि आपके पेशवा तो वह्हाबी हैं। फ़रमाइए आप लोग अपने को क्या कहते हैं? नमाज़ रोज़ा की बात तो बाद में होगी। पहले ये फ़ैसला हो जाना चाहिए

कि आप लोग भी वह्हाबी हैं या नहीं? मौलाना थानवी के हवाले से ये साबित हो चुका है कि ''वह्हाबी'' बे–अदब' को कहते हैं। लिहाज़ा खुले लफ़्ज़ों से कह दीजिए कि बफ़ज़्लिही तआला हम लोग बारगाहे रिसालत के अदब आशना हैं और हमारा सीना इश्क़े रसूल का मदीना है। आप लोग अपनी बेअदबी का टोकरा सहारनपुर, देवबंद थाना–भवन वग़ैरा लेकर चले जाइए। इन्शा अल्लाह तआला ये ऐसा संजीदा और मुस्कत जवाब होगा कि सुनते ही तब्लीग़ियों के कलेजे का ख़ून पानी हो जाएगा।

❖❖❖

मुहम्मद बिन अब्दुलवह्हाब नज्दी, ज़ालिम, बाग़ी, खूंखार, फ़ासिक़ था

आज ये कैसा इंक़लाब आया
आपकी और अश्कबार आंखें

हवाला मुलाहज़ा फ़रमाइए –

मौलाना हुसैन अहमद टांडवी : "साहिबो! मुहम्मद बिन अब्दुल वह्हाब नज्दी इब्तदाए तेरहवीं सदी में नज्द (अरब) से ज़ाहिर हुआ और चूंकि ख़्यालाते बातिला और अक़ाइदे फ़ासिदा रखता था। इसलिए उसने अह्ले-सुन्नत व जमाअत से क़त्ल व किताल किया और उनको बिलजब्र अपने ख़्यालात की तकलीफ़ देता रहा। उनके अमवाल को ग़नीमत का माल और हलाल समझा किया। उन "अह्ले-सुन्नत" के क़त्ल को बाइसे, सवाब व रहमत का शुमार करता रहा। अह्ले हरमैन को खुसूसन और अहले हिजाज़ को उमूमन उसने तकलीफ़े शाक़्क़ा पहुंचाई। सल्फ़े सालिहीन और इत्तिबा की शान में निहायत गुस्ताख़ी व बे-अदबी के अल्फ़ाज़ इस्तेमाल किये। बहुत-से लोगों को बेवजह उसके तकालीफ़ शदीदा के मदीना मुनव्वरा और मक्का मुअज़्ज़मा छोड़ना पड़ा और हज़ारों आदमी उसकी फ़ौज के हाथों शहीद हो गए। अलहासिल वो एक ज़ालिम, बाग़ी, ख़ूंख़ार फ़ासिक़ शख़्स था।" (अश्शहाबुस्साक़िब। पेज ५०)

मौलाना टांडवी की मुंदरजा बाला इबारत अंगरेज़ी या संस्कृत ज़बान में नहीं है। शब व रोज़ की मुस्तमिल हिन्दुस्तानी ज़बान है। उसके समझने के लिए डिक्शनरी और लुग्त की ज़रूरत नहीं है। बतौर नतीजा एक ही सांस में मौलाना टांडवी ने "मुहम्मद बिन अब्दुल वह्हाब नज्दी को ज़ालिम, बाग़ी, खूंखार, फ़ासिक़-सब कुछ कह डाला।

ये एक ऐसा आईना है जिसमें मौलाना ज़करीया, मौलाना मंज़ूर नोमानी और तमाम वह्हाबियों का चेहरा देखा जा सकता है। हत्ता कि मौलाना थानवी को भी लोग वह्हबी समझते थे।

हवाला : मौलाना थानवी : "गो अब भी यहां के बाज़ उलमा मुझको वह्हाबी कहते हैं और बाज़ बैरूनी उलमा यहां आकर लोगों को समझा गए हैं कि ये शख़्स वह्हाबी है, इसके धोखा में मत आना। (तज़्किरतुर्रशीद जिल्द अव्वल पेज १३५)

गोया मौलाना थानवी को बहुत-से उलमा और अवाम व ख़ास बे-अदब समझते थे।

❖❖❖

सरवरे कौनेन मालिके आलम हैं
सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम

मालिके आलम हैं गो पास कुछ रखते नहीं
दो जहां की नेमतें हैं उनके ख़ाली हाथ में

हवाला मुलाहज़ा फ़रमाइए –

मौलाना महमूदल-हसन सद्र देवबंद : "रसूलुल्लाह स॰ उनके लिए हिबा का जवाज़ बई माना है कि आप अस्ल में बादे ख़ुदा मालिके आलम हैं। जमादात हों या हैवानात, बनी–आदम हों या ग़ैर बनी–आदम अगर कोई साहब पूछेंगे और फ़हीम होंगे तो शायद हम इस बात को आशकारा भी कर दें। अल्क़िस्सा आप अस्ल में मालिके आलम हैं और यही वजह है कि अद्ल व महर आपके ज़िम्मा वाजिब न था।

"(**अदिल्ला कामिला** मारूफ़ बिह इज़हारुल–हक़ पेज ६)

सच फ़रमाया सय्यदना इमामुल–कबीर इमाम अहमद रज़ा बरैलवी रज़िअल्लाहु तआला अन्हु ने –

मैं तो मालिक ही कहूँगा कि हो मालिक के हबीब
यानी महबूब व मुहिब्ब में नहीं मेरा तेरा

उसके बरअक्स इस्माईली शरीअत मुलाहज़ा फ़रमाइए –

हवाला

मौलवी इस्माईल देहलवी : "और जिसका नाम मुहम्मद या अली है वो किसी चीज़ का मुख़तार नहीं।" (**'तक़्वीयतुल-ईमान'** पेज ३६)

इस तज़ाद की बुनयाद पर कहा जाता है कि देवबंदी बोलते हैं समझते नहीं !

❖❖❖

वसीला दुरुस्त है

मुहब्बत में उड़ाई ख़ाक यूं अह्ले मुहब्बत ने
उठा के आसमां पर कूए जानां की ज़मीं रख दी

हवाला मुलाहज़ा फ़रमाइए –

मौलाना थानवी : "दुआ से मदद फ़रमाइए। मवाइज़ पर हुजूर ने अपनी खुशनूदी का मज़दा इरशाद फ़रमाया। मैं सच अर्ज़ करता हूँ कि हुजूर की रज़ा को दलीले कुबूल व वसीला–ए–नजात समझता हूँ। खुदा करे सुदूरे ख़ता पर भी हुजूर हम खुद्दाम से कभी नाखुश न हों बल्कि तंबीह फ़रमा दें।" ('तज़्किरतुर्रशीद' पेज १२७)

मौलाना थानवी गंगोही साहब की रज़ा को वसीला–ए–नजात समझते थे।

सितारों के आगे जहां और भी हैं

अब मौलाना आशिक़ इलाही मेरठी को थानवी साहब की बारगाह में देखिए –

हवाला –

मौलवी आशिक़ इलाही मेरठी-"वल्लाहुल अज़ीम! मौलाना के पैर धोकर पीना नजाते उख़रवी का सबब है।" ('तज़्किरतुर्रशीद' हिस्सा अव्वल पेज ११३)

अब इस आइने में देवबंदियत की मकरूह व गंदा सूरत देखकर उनसे मुतालबा कीजिए कि अगर गंगोही की रज़ा और थानवी के पांव का धोवन वसीला–ए–नजात हो सकता है तो हज़रत ग़ौसुल–आज़म व ख़्वाजा ख़्वाजगाने चिश्त, इमाम हुसैन, अली मुर्तज़ा अमीरुल–मोमिनीन फ़ारूक़ आज़म व सय्यदना अबू–बक्र सिद्दीक़ रज़िअल्लाहु तआला अलैहिम अजमईन को वसीला बनाने पर देवबंदियत चराग़पा क्यों होती है? अगर गंगोह व थाना भवन के शातिमाने रसूल को वसीला बनाया जा सकता है तो अंबिया व रुसुल को तो बदरजा औला वसीला बनाया जा सकता है।

सातवाँ बाब

देवबंदी बोलते हैं हमगर समझते नहीं !

नाम निहाद दानिशवरों के तख़ालुफ़ व तज़ाद का
तंक़ीदी जाइज़ा

फ़ित्ना उठे है किस तरह उठ के ज़रा दिखा कि यूं
हश्र बपा हो किस तरह चल के ज़रा बता कि यूं

या रब न वो समझे हैं न समझेंगे मेरी बात
दे और दिल उनको जो न दे मुझको ज़बां और

इसी एक उनवान के लिए मैंने क़लम उठाया था। मगर बात बढ़ती गई और सिलसिला–ए–गुफ़्तगू दराज़ से दराज़–तर होता गया। ज़ेरे मुतालआ किताब में जहां इल्मी मज़ामीन हैं, वहीं वाकियात व हिकायात की रंगारंगी भी है। नक़्द व नज़र की ज़मीन संगलाख़ ही नहीं बल्कि उसे इंतहाई ख़ुश्क मौज़ू तसव्वर किया जाता है। बईहमा मैंने उसे क़ाबिले क़ुबूल बनाने की कोशिश की है मगर कामयाबी व नाकामी का फ़ैसला आपके हाथ है।

मैंने इस बाब में उलमा–ए–देवबंद की इबारात व अक़्वाल के कुछ ऐसे शवाहिद पेश किये हैं जिससे आप इस हक़ीक़त का एतराफ़ कर सकेंगे कि यकीनन ये हज़रात बोलते हैं मगर समझते नहीं।

चुनांचे आप इसका तजरबा इस तरह कीजिए। किसी भी देवबंदी से कहिए कि '**हिफ़्ज़ुल-ईमान**' की इबारत में सय्यदे आलम स॰ की तौहीन है तो वो हरगिज़ न कहेगा कि मुझसे समझ लीजिए बल्कि बरजस्ता आप ही से मुतालबा करेगा कि मुझे समझा दीजिए। जिसका वाज़ेह मतलब ये है कि वो समझे होता तो समझने की दरख़ास्त क्यों करता। यही वजह है जब मुनाज़रों मे देवबंदी मुनाज़िर से '**हिफ़्ज़ुल-ईमान**' की इबारत का बेगुबार मफ़हूम दरयाफ़्त किया जाता है तो देवबंदी मुनाज़िर की आयं–बायं–शायं हांकेगा मगर असल इबारत को छोड़ना नहीं चाहता। महज़ इस ख़ौफ़ से

कि इस इबारत के क़रीब आए नहीं कि हमारा भांडा फूटा। लोग इक जबान होकर कहना शुरू कर दें कि देवबंदी बोलता है मगर समझता नहीं। इस बाब में जो शवाहिद पेश किए जाएंगे ताकि हस्बे ज़रूरत उसके सियाक़ व सबाक़ और मौक़ा व महल्ल वगैरा की तशरीह कर दी जाएगी ताकि अस्ल मफ़हूम के समझने में नाज़िरीन को ज़हमत व दुश्वारी न हो। मसलन लखनऊ के कोई शायर मोमबत्ती की रौशनी में कुछ लिख पढ़ रहे थे। अचानक परवानों ने रौशनी पर हमला किया। मोमबत्ती बुझ गई। परवाने जल गए और कमरे पर अंधेरा छा गया जिससे मुतअस्सिर होकर शायर ने बरजस्ता शे'र कहा।

इलाही आग लग जाए इस ज़ौक़े मुहब्बत को
जले[१] कोई, मरे[२] कोई, अंधेरा मेरी महफ़िल में

मौक़ा–महल्ल न मालूम हो तो महज़ एक शे'र है लेकिन मौक़ा–महल्ल मालूम हो जाने के बाद शे'र भी है और हिकायत भी। बस ऐसे ही हम अपने दावे की दलील में जो शवाहिद पेश करेंगे हस्बे मौक़ा हम उसकी हल्की–फुल्की तशरीह कर देंगे ताकि हर ज़ेहन आसानी से उसे क़ुबूल कर सके !

अल्बत्ता : ये वाज़ेह रहे किसी भी उसूल व ज़ाबते को समझाने के लिए चंद मिसालें बहुत काफ़ी होती हैं। ये कुछ ज़रूरी नहीं कि उस पर मुस्तकिलन कोई किताब ही लिखी जाए। बस इसी तरह मैं इसका मुद्दई हों कि देवबंदी बोलते हैं मगर समझते नहीं। लिहाज़ा इस दावे की दलील में चंद मिसालों को पेश कर देना काफ़ी है। अब आप आने वाली मिसालों के लिए नया ज़ेहन हाज़िर कर लीजिए!

१. लफ़्ज़ वह्हाबी की बहस

१–दुनिया की हर क़ौम अपनी क़ौमी व ख़नादानी शराफ़त नाम व नसब की वज़ाहत और मसलक व अक़ीदे की अज़मत व बरतरी पर फ़ख़्र करती है। सैय्यद–ज़ादे, शैख़–ज़ादे, मलिक–ज़ादे, ख़ान–ज़ादे – यही चाहते हैं कि उन्हें सैय्यद, शैख़, मलिक और ख़ान ही कहा जाए। हनफ़ी अपने को हनफ़ी कहलाता है, शाफ़ई यही चाहता है कि उसे शाफ़ई कहा जाएय क़ादिरी, चिश्ती अपने को क़ादिरी चिश्ती कहलाने में फ़ख़्र महसूस करते हैं। अब्दुलमाजिद और मुख़्तार अहमद यही चाहते हैं कि उन्हें

(१) शमा जली, (२) परवाना मरे।

अब्दुलमाजिद और मुख़तार अहमद कहा जाए। मगर खुदा की इस बिछाई ज़मीन पर वह्हाबी एक ऐसा नाम है कि वह्हाबी भी आपने को वह्हाबी कहना और कहलवाना पसंद नहीं करता। अजमल का एक बहुत ही सादा और पुरमाआनी शे'र है।

वह्हाबी से पूछो कि तू है वह्हाबी
तो फ़ौरन कहेगा नहीं तो, नहीं तो

नहीं तो, नहीं तो की तकरार ने शे'र में जान डाल दिया है लेकिन उसकी नहीं तो, नहीं तो ने वाज़ेह कर दिया कि वो बोल रहा है मगर समझ नहीं रहा है। इसलिए कि अगर वो समझता कि मेरे इंकार से वह्हाबियत की कितनी मकरूह व गंदी तस्वीर का तसव्वर होगा तो हरगिज़ 'नहीं तो, नहीं तो' न कहता। लिहाज़ा या तो वह्हबिय्यत बग़ैर समझे कुबूल कर ली गई या अपनी नासमझी से अपने को वह्हाबी कहना नहीं चाहता। बहरे नौ ये इल्ज़ाम सिर पर बाक़ी रहता है कि ये क़ौम बोलती है मगर समझती नहीं।

नोट : अब धीरे–धीरे उनमें दो पार्टी हो गई है। बाज़–बाज़ लोग दबी ज़बान से अपने को वह्हाबी कहने लगे। मगर एक बहुत बड़ा तबक़ा अभी अपने को वह्हाबी कहने में शरमाता है। खुद अकाबिरे देवबंद में दो गुरूप हैं। किसी ने मुहम्मद बिन अब्दुलवह्हाब नज्दी को मुत्तबे सुन्नत कहा और किसी ने ज़ालिम, खूंख़ार, बाग़ी लिखा। ये उनकी कोई नई रस्म व राह नहीं है बहुत पुरानी अदा है।

२. नाम की बहस

ऐसे ही अगर तकरीर में देवबंदी उलमा का नाम लेकर लिया जाए तो देवबंदी अवाम बरहम हो जाते हैं। अरे साहब! ये तो हमारे अलिम का नाम ले रहे हैं। क्यों साहब ये नाम किस लिए रखा गया? छापने के लिए या छुपाने के लिए। अलावा अज़ीं कोई अपने नाम तो खुद रखता नहीं (बजुज़ शोअ़रा के) वो भी नाम नहीं 'तख़ल्लुस'। शोअ़राए किराम ज़रूरते शेअ़री के तहत अपना हलका–फुल्का छोटा मोटा–सा तख़ल्लुस रख लेते हैं। वरना एक मिस्रा के बराबर तो नाम ही हो जाएगा मालूम हुआ कि मां बाप रखते हैं या अइज़्ज़ा व अक़रबा वग़ैरा। लिहाज़ा अगर नाम लेना जुर्म है तो सच–सच बताइए कि नाम लेने वाला मुज्रिम है या नाम रखने वाला? इसलिए अगर नाम लेने पर आप बरहम हैं तो हमें कह लेने दीजिए कि आप

बोल रहे हैं मगर समझ नहीं रहे हैं।

आइंदा रा इहतियात के तहत अब ऐसा कीजिए आइंदा जो औलाद पैदा हो और वो आलिम[1] गहोने वाली हो तो उसका नाम ही न रखीएगा। लोग खुद अपने मज़ाक़ के मुताबिक़ कोई–न–कोई नाम रख ही लेंगे। कम–अज़–कम ''मौलाना कुछ नहीं'' तो सभी कह लेंगे, और इतने ही पर बस नहीं। अगर हस्बे ज़रूरत उलमा देवबंद का नाम ले लिया जाए तो देवबंदी अवाम कहते हैं तक़रीर नहीं हो रही है बल्कि मौलाना गाली बक रहे हैं। ये भी एक ही रही। अगर मौलाना का नाम ही गाली है तो नाम बदलवा दीजिए। इल्ज़ाम हमारे सिर क्यों?

३. हवाले जात की बहस

बिल्कुल इसी तरह अगर सुन्नी उलमा अपनी तक़रीरों में उलमाए देवबंद की इबारत का हवाला दे देते हैं कि **'हिफ़्ज़ुल-ईमान'** में ये है, **'बराहीने-क़ातिआ'** में ऐसा है और **'तहज़ीरुन्नास'** की ये इबारत है तो इक ज़बान हो कर देवबंदी अवाम ये कहते हैं कि मुश्ताक़ निज़ामी तक़रीर करने नहीं आया, फ़साद मचाने आया है। कुरबान जाइए –

इस सादगी पे कौन न मर जाए ऐ ख़ुदा

तीन घंटे की तक़रीर में अगर उलमा–ए–देवबंद की किताबों का नाम न लिया जाए तो हमारा हरीफ़ भी हमें ख़तीब व मुक़र्रिर कहता है। लेकिन अगर भूले भटके भी **'हिफ़्ज़ुल-ईमान'** या **'तक्वीयतुल-ईमान'** का नाम आ गया तो हम बहुत बड़े फ़सादी हो गए!

मालूम हुआ जनाब, बोल रहे हैं मगर समझ नहीं रहे हैं। गोया ये कह कर देवबंदियों ने खुद इसका एतराफ़ कर लिया कि सुन्नी उलमा की तक़रीर में फ़साद नहीं हैं बल्कि उलमाए देवबंद की किताबों में फ़साद है। इसलिए कि किताबों का नाम लेने ही से हमें फ़सादी कहा जाता है। इसी को कहते हैं जादू वो है जो सिर चढ़ के बोले। लिहाज़ा हमारा मुतालबा है कि अपनी किताबों का फ़साद दूर कर दो, ख़ुद ही इख़्तिलाफ़ ख़त्म हो जाएंगे वरना हम बराबर ये कहते रहेंगे कि देवबंदी[2] बोलते हैं मगर समझते नहीं।

---

(१) मुनकेरीन इल्मे गैब पर एक लतीफ तंज है।
(२) वरना हमें अपने उलमा के नाम लेने और किताबों के हवाले जात पेश करने की इजाज़त दो।

४. "या रसूलुल्लाह" की बहस

भरोसा उसको कहते हैं गुनहगारों ने महशर में
ख़ुदा के सामने तुमको पुकारा या रसूलुल्लाह!

ख़ुशअक़ीदा मुसलमान जब 'या रसूलुल्लाह' कहता है तो देवबंदी अवाम व ख़वास सुन्नियों पर एक इल्ज़ाम ये भी लगाते हैं कि उस पार्टी ने "अल्लाह" कहना छोड़ दिया। बस रसूल ही रसूल कहते हैं। अक़्ल पर पत्थर पड़ना इसी को कहते हैं। अजी जनाब जो सिर्फ़ 'या अल्लाह' कहता है उसने तो रसूल का नाम छोड़ दिया मगर जो या रसूलुल्लाह कहता है वो अल्लाह और रसूल दोनों ही का नाम लेता है। अपना तो हाल ये है कि –

दिल को थामा उनका दामन थाम के
हाथ अपने दोनों निकले काम के

इस वाज़ेह और खुली हक़ीक़त के बाद भी क्या हम ये नहीं कह सकते कि देवबंदी बोलते(१) हैं मगर समझते नहीं।

५. दूर और हुज़ूर की बहस

आईए उनकी बौखलाहट और झंझनाहट की एक और मिसाल मुलाहज़ा फ़रमाइए। ख़ुश–अक़ीदा मुसलमान जब महफ़िले मीलाद शरीफ़ में **'या नबी सलाम अलैक' 'या रसूल सलाम अलैक'** पढ़ता है तो गले की रगें फुला कर हर देवबंदी यही कहता है कि कहां कोलकता व मुम्बई और कहां मदीना? मदीना तो बहुत दूर है। कहीं दूर वाले को **'या'** के ज़रिया मुख़ातब किया जाता है। लेकिन यही हज़रात अपनी तक़रीरों में कहते हैं। 'हुज़ूर ने फ़रमाया' जिससे मुराद सरकारे दोआलम स॰ की ज़ाते गिरामी है। अब उनसे दरयाफ़्त कीजिए कि जो नबी हमारे सलाम में दूर हैं वो आप की तक़रीर में 'हुज़ूर' कैसे हो गया? दूर हैं(२) तो 'हुज़ूर' नहीं। 'हुज़ूर' हैं तो 'दूर' नहीं। क्या इसके बाद भी शुब्हा बाक़ी रह जाता है कि देवबंदी बोलते हैं, समझते नहीं! वो किसी और का नबी होगा जो दूर होगा। हमारा नबी तो हमारी जान से ज़्यादा क़रीब है। अपना तो हाल ये है –

तुम मुख़ातब भी क़रीब भी हो
तुम को देखें कि तुम से बात करें

---

(१) या रसूलुल्लाह कहने पर उनके सवाल का यह एक रुख़ है।
(२) नुकात इल्मी जो सनअते लफ़्ज़ी के तहत है।

६. हद से बढ़ाने की बहस

तो दिल में तो आता है समझ में नहीं आता
मैं जान गया बस तेरी पहचान यही है

उलमा–ए–अह्ले सुन्नत की तकरीर व तहरीर पर उलमा–ए–देवबंद एक एतराज़ ये भी करते हैं कि ये लोग रसूल को ख़ुदा से बढ़ा देते हैं। मआज़ल्लाह !

सच है! बोल रहे हैं मगर समझ नहीं रहे हैं। ग़ौर करने का मक़ाम है कि किसी को किसी से बढ़ाना कहां बोला जाता है। उसे तो एक मुब्तदी तालिबे इल्म भी जानता है कि किसी–से–किसी को बढ़ाना वहीं बोल सकते हैं कि जिससे बढ़ाया जाए। पहले उसकी हद मुतऐय्यन हो जाए। मस्लन : ये कहा जाए कि उमर दौड़ में ज़ैद से बढ़ गया यानी ज़ैद दो ही मील दौड़ कर रुक गया और उमर चार मील तक दौड़ गया। उमर का बढ़ना उसी वक़्त बोलेंगे जबकि ज़ैद के दौड़ की हद मुतऐय्यन कर ली जाए। बस ऐसे ही रसूल का ख़ुदा से बढ़ा देना उस वक़्त बोल सकते हैं जबकि ख़ुदा की हद मुतऐय्यन कर दी जाए। ख़ुदा का शुक्र है हम अह्ले सुन्नत व जमाअत के नज़दीक ख़ुदा अपनी ज़ात व सिफ़ात दोनों में ग़ैर मुतनाही व लामहदूद है। हम इसकी कोई हदबंदी नहीं कर सकते। जब हम उसकी कोई हद ही नहीं जानते तो ख़ुदा से बढ़ा देने का कोई सवाल ही नहीं पैदा होता। हाँ! अगर उलमा–ए–देवबंद ने अपने ख़ुदा की कोई हद मुतऐय्यन कर ली है और हमारा रसूल उनके महदूद ख़ुदा से बढ़ गया हो तो ये कोई मक़ामे तअज्जुब नहीं। अच्छी तरह समझ में आ गया कि देवबंदी बोलते हैं मगर समझते नहीं।

७. ग़ैरुल्लाह से मांगने की बहस

इतनी न बढ़ा पाकी-ए-दामां की हिकायत
दामन को ज़रा देख, ज़रा बंद क़बा देख

हम अह्ले सुन्नत व जमाअत ख़ुदा के महबूब और बरगुज़ीदा बंदों की बारगाह में हुसूले बरकत व फ़ैज़ की ग़र्ज से हाज़िर होते हैं। न उन्हें हम ख़ुदा समझते हैं और न ही ख़ुदा–जैसा। बल्कि अल्लाह तआला का महबूब

बंदा समझ कर हाज़री देते हैं। उन्हें वसीला बनाकर खुदा से मांगते हैं। हमारे इस सवाल पर उलमा–ए–देवबंद और देवबंदी अवाम चीं–ब–जबीं होकर ये एतराज़ करते हैं। देखो, देखो! ये तो गै़रुल्लाह से मांग रहा है। वाह! वाह! ये भी मेरे ग़ौस व ख़्वाजा की एक खुली हुई करामत है। ज़बान उनकी है और अक़ीदा हमारा है।

ख़्याल फ़रमाइए! जब सुन्नियों ने सुलतानुलहिन्द ख़्वाजा ग़रीब नवाज़ रज़िअल्लहु तआला अन्हु से सवाल किया तो दुनियाए देवबंदियत चीख़ उठी! अरे! अरे! ये तो गै़रुल्लाह से मांग रहा है। ये कहकर जनाब ने खुद ही हमारा मामला साफ़ कर दिया कि ख़्वाजा को अल्लाह नहीं समझ रहा है बल्कि गै़रुल्लाह समझ रहा है।

नादानो ! अगर हमने गै़रुल्लाह को गै़रुल्लाह ही समझा तो जुर्म क्या हुआ? जिस पर तुम क्यामते सुगरा बरपा किये हुए हो। खुद तुम अपने बोले हुए जुम्ले की तो लाज रखो । ये तो तुम्हारा रोज़मर्रा है कि बेटी माँ से मांग्ती है, बेटा बाप से, मरीज़ डॉक्टर से, शार्गिद उस्ताद से और मुरीद पीर से वग़ैरा वग़ैरा। वहां तुम्हारी गैरत कहां सो जाती है? वहां क्यों नहीं सोचते कि गै़रुल्लाह से क्यों मांगा जाए? तुम्हारा खुद–साख़्ता क़ानून का पिटारा अजमेर व बहराइच ही में क्यों खुलता है जबकि मांगने वाला खुद उसका एतराफ़ करता है कि ख़ुदा की दौलत उसके एक महबूब बंदे के वसीले से मांग रहा हूँ। यानी ख़ज़ाना खुदा का, दामन हमारा, हाथ ख़्वाजा का। बहरहाल औलिया–ए–किराम से मांगने पर तुम्हारा ये कहना कि ये गै़रुल्लाह से मांग रहा है। तुमने खुद अपने पांव पर कुल्हाड़ी मारी और हमें ये कहने की इजाज़त दे दी कि देवबंदी बोलते हैं मगर समझते नहीं।

अल-फ़ज़्लु मा शहिदत बिहिल-अअ्दा

❖❖❖

८. दुरूद शरीफ़ पढ़वाने की बहस

जो शय तेरी निगाह से गुज़र से दुरूद पढ़
हर जुज़ व कुल है मज़हरे अनवारे मुस्तफ़ा

पालन साहब जो हमें बिदअती कहते हैं। हम उन्हें देवबंदी इमामबाड़े का नुमाइशी तअज़िया समझते हैं। इटावा में तकरीर करते हुए जनाब ने

फ़रमाया कि सुन्नी उलमा जब भूल जाते हैं। तो अपने अवाम से दुरूद पढ़वाते हैं।

जनाब बोले हैं मगर समझे नहीं!

नाज़िरीन! ख़ुद फ़ैसला फ़रमाएं। गोया इस जुम्ले का पस मंज़र ये है कि भूली हुई चीज़ को याद करने का बेहतरीन नुस्ख़ा ये है कि दुरूद शरीफ़ पढ़ा जाए। इसी बुनयाद पर मैं कहता हूँ कि देवबंदी बोलते हैं मगर समझते नहीं ।

अलावा अज़ीं सुन्नी उलमा अपने अवाम को दुरूद शरीफ़ पढ़ने का हुक्म देते हैं तो ये मनमानी नहीं है बल्कि यही सुन्नते इलाहिया है। ख़ुदा ने भी अह्ले ईमान को सलात व सलाम भेजने का हुक्म दिया है। (मगर अह्ले ईमान ही को) अपने गिरेबान में मुंह डाल कर सोचिए कि ये फ़ेल लाइक़े तहसीन है या क़ाबिले तमस्ख़ुर व इस्तिहज़ा? मगर अफ़सोस तो ये है इस वक़्त मुख़ातब सिर्फ़ जाहिल नहीं बल्कि सनद याफ़्ता जाहिल है वरना दुरूद शरीफ़ से मुतअल्लिक़ तो ख़ुश-अक़ीदा मुसलमानों का ये दस्तूर है ।

मैं सो जाऊँ या मुस्तफ़ा कहते-कहते
खुले आंख सल्ले अला कहते-कहते

६. क़ब्रों पर अज़ान की बहस

अब तो फूले न समाएंगे कफ़न में आसी
है शबे गोर भी उस गुल की मुलाक़ात की रात

दारुल-उलूम अमजदिया नागपुर अह्ले सून्नत की एक मेयारी व मरकज़ी दर्सगाह है। दो बर्स पहले जब मैं उसके सालाना जल्सा-ए-दस्तारे फ़ज़ीलत में हाज़िर हुआ तो नागपुर के सुन्नी अवाम ने बताया कि दो चार रोज़ क़ब्ल दारुल-उलूम देवबंद के सफ़ीर मौलाना इरशाद अहमद आए थे। उन्होंने मसअला-ए-अज़ाने क़ब्र पर एक बहुत-ही आमियाना और इश्तिआल-अंगेज़ तक़रीर करते हुए दो सवालात क़ाइम किए हैं। वो सवालात ये हैं –

१ – कौन-सी नमाज़ पढ़नी होती है जो मय्यत की क़ब्र पर अज़ान दिलाई जाती है ?

२ – चूंकि सुन्नियों की क़ब्र में शैतान घुस जाता है। इसी अंदेशा से

सुन्नी अज़ान देकर उसे भगाते हैं। हम देवबंदियों की क़ब्र में नहीं जाता। इसलिए हम अज़ान की कोई ज़रूरत महसूस नहीं करते। मैंने अपने अवाम से कहा कि जवाब तो रात के जल्से में दूंगा मगर मौलाना इरशाद की क़यामगाह तक ये पैग़ाम अभी से पहुंचा दो कि आपके मौलाना बोले तो हैं मगर समझे नहीं हैं।

बसिल्सिला–ए–जवाब मैंने आर्ज़ किया कि मंतिक़ी इस्तिलाह की बुनयाद पर अज़ान और नमाज़ और ऐसे मफ़्हूम कुल्ली हैं जिनमें उमूम व खुसूस की निस्बत पाई जाती है। उनमें एक माद्दा इज्तिमा है दो इफ़्तराक़ का। **मसलन :** पंजवक्ता नमाज़ और नमाज़े जुमा। उसमें अज़ान और नमाज़ दोनों हैं। ये माद्दा इज्तिमा है। बच्चे की विलादत के मौक़ा पर अज़ान दी जाती है। अज़ान है मगर नमाज़ नहीं। यह माद्दा इफ़्तराक है। नमाज़ इदैन में नमाज़ है मगर अज़ान नहीं, यह दूसरा माद्दा इफ़्तराक़ है। इसलिए मय्यत की क़ब्र पर अज़ान पुकारने का मतलब नमाज़ नहीं है बल्कि यह मय्यत के इब्तला व आज़माइश का वक़्त है। अज़ान के ज़रिआ उसे तसल्ली दी जा रही और उसके अलावा अज़ान दाफ़ेउल–बला भी है। मसलन वबाई अमराज़, ताऊन वग़ैरा या तूफ़ानी आंधी बारिश के मौक़ा पर अज़ान दी जाती है। मक़सद नमाज़ पढ़नी नहीं है बल्कि अज़ान दाफ़ेउलबला समझ कर पुकारी जाती है। लिहाज़ा इस तरह का सवाल कोई गंवार और अनपढ़ तो कर सकता है मगर यह सवाल किसी लिखे पढ़े का मालूम नहीं होता है। रह गया सवाल (२)कि सुन्नी इसलिए अज़ान पुकारते हैं कि उनकी क़ब्र में शैताने लईन चला जाता है और देवबंदी इसलिए अज़ान नहीं पुकारते कि उनकी क़ब्र में शैतान का गुज़र नहीं। बस यही वो मक़ाम है कि जनाब बोलते है मगर समझते नहीं।

चुनांचे नागपुर के मुसलमानों से मैं ने दरयाफ़्त क्या बताओ! शैतान किसे बहकाता है? सबने कहा : मोमिन को। मैंने कहा– मौलाना इरशाद का ये कहना कि सुन्नियों की क़ब्र में शैतान चला जाता है, गोया उन्होंने इसका एतराफ़ किया है कि क़ब्र में मोमिन लेटा हुआ है। अगर मोमिन न होता तो शैतान जाता क्यों? इसी को कहते हैं ।

अल-फ़ज़्लु मा शहिदत बिहिल-आ़दा

अलावा अज़ीं जनाब का ये कहना कि देवबंदियों की क़ब्र में शैतान नहीं जाता। बिल्कुल सही है। जब शैतान समझता है कि इस क़ब्र में मेरी ही

कटैगरी का और मुझ–जैसा ही लेटा हुआ है तो वो वहां जाकर क्या करेगा ? इससे मालूम हुआ कि इसमें मेरे ही भाई बंद और चचा भतीजे बिराजमान हैं। जाने से क्या फ़ायदा? जो काम मैं करता हूँ, वही ये भी करते थे। खुदारा! अब तो हमें कह लेने दीजिए कि देवबंदी बोलते हैं मगर समझते नहीं!

❖❖❖

१०. मुश्रिक मुसलमान की बहस

१० – '**तक्वीयतुल-ईमान**' की रौशनी में अमाइदे देवबंद के इल्म व दानिश का सही अंदाज़ा कीजिए। हवाला मुलाहज़ा फ़रमाइए.........

हवाला : "कोई नाम रखता है अली बख़्श, पीर बख़्श, गुलाम मुहीउद्दीन, गुलाम मोईनुद्दीन–ये सब झूठे मुसलमान सच शिर्क में गिरफ़्तार हैं। (**तक्वीयतुल-ईमान** पेज ५–६)

दूसरा हवाला..........

कोई नाम रखता है : नबी बख़्श, सतीला बख़्श, गंगा बख़्श-सो ये आदमी मरदूद हो जाते हैं।" तक्वीयतुल-ईमान पेज ६४

तक़्वीयतुल-ईमान उलमाए देवबंद के नज़दीक कोई मामूली या हल्की–फुल्की किताब नहीं है बल्कि उसका पढ़ना और हर घर में रखना ऐन इस्लाम है। हवाला के लिए "**ख़ून के आंसू**" देखिइए। गोया जिस घ र में '**तक्वीयतुलईमान**' नहीं उस घर से इस्लाम ही ग़ायब है। ये एक ज़ैली गुफ़्तगू है। हवाले में खत–कशीदा इबारत को मुलाहज़ा फ़रमाइए। जनाब का कहना है कि जो लोग इस तरह का नाम रखते हैं वो झूठे मुसलमान सच शिर्क में गिरफ़्तार हैं। कुरबान जाइए उस अक्ल व दानिश पर कि सच शिर्क में गिरफ़्तार होते हुए भी मुसलमान ही रह गया। उसे तो इस्लामी ख़ानवादे का एक बच्चा भी जानता है कि शिर्क और इस्लाम दोनों जमा नहीं हो सकते। मुसलमान है तो मुश्रिक नहीं और मुश्रिक है तो मुसलमान नहीं। मगर इस्माईली शरीअत का दस्तूर ही जुदागाना है। यही वो वजह हैं जिनकी बिना पर कहता हूँ कि देवबंदी बोलते हैं मगर समझते नहीं।

वाज़ेह रहे एक मुसलमान अपनी शामते आमाल से झूठा तो हो सकता है मगर वो मुसलमान भी हो और मुश्रिक भी– ऐसा हरगिज़ नहीं हो

सकता। अलावा अज़ीं ये भी तो देखो कि इस्माईली इस्टेट के सलॉटर हाउस में ज़बह कौन हो रहा है? मौलाना गंगोही का नसबनामा मुलाहज़ा कीजिए –

"रशीद अहमद इब्ने हिदायत अहमद, इब्ने पीर बख़्श, इब्ने गुलाम हसन, इब्ने गुलाम अली"

"रशीद अहमद बिन करीमुन्निसा बिन्ते फ़रीद बख़्श बिन क़ादिर बख़्श बिन मुहम्मद सालेह बिन गुलाम मोहम्मदी।"

गोया इस्माईली शरीअत में ये मुश्रिक भी थे और मरदूद भी। बहरहाल मुंदरजा बाला हवाले में इस्लाम और शिर्क का बेजोड़ पैवंद भी आपने देखा और आग व पानी को एक ही जगह जमा करने में इसका दीवानापन भी देखा! अब तो आप भी कह लीजिए साहब देवबंदी बोलते हैं मगर समझते नहीं।

११. हवा उखड़ गई

११. – **'तक्वीयतुल ईमान'** ही का एक दूसरा हवाला मुलाहज़ा कीजिए –

''फिर अल्लाह आप ऐसी बाव ''हवा'' भेजिएगा कि सब अच्छे बंदे कि जिनके दिल में थोड़ा-सा ईमान होगा मर जाएंगेऽ ह्सो पैग़म्बरे ख़ुदा के फ़रमाने के मुवाफ़िक़ हुआ।'' (तक्वीयतुल-ईमान, पेज ३७)

दारुल–इफ़्ता देवबंद से फ़त्वा तलब कीजिए कि इस्माईली शरीअत की रौशनी में जब ऐसी हवा चल गई कि ईमान वाले जिस क़दर थे वो सब–के–सब मर गए। लिहाज़ा दूसरों को छोड़िए ख़ुद अपने मुतअल्लिक़ फ़रमाइए कि क्या आप अपने ही फ़त्वे से काफ़िर नहीं हुए? यक़ीनन हुए। मुसलमानों को काफ़िर बनाने की रौ में इतना भी होश न रहा कि अपने तरकश का तीर किसके कलेजे में पैवस्त होगा। अवाक़िब व नताइज से बेख़बर होकर जब कोई इबारत लिखी जाती है तो इसी के बाद हम ये कहते हैं कि –

देवबंदी बोलते हैं मगर समझते नहीं

१२. पुकारने और मदद मांगने की बहस

१२– ये भी एक अजीब बात है कि फ़िर्क़ा ज़ाग़िया[1] कुरआन व हदीस से कम समझाता है मगर अपने खानासाज़ बुजुर्गों की रिवायत को बहुत जल्द कुबूल कर लेता है। चुनांचे उनके हफ़वात व खुराफ़ात में से एक ये भी है कि "ग़ैर खुदा से मदद मांगना शिर्क है और दूर वाले को "**या**" हर्फ़े निदा से नहीं पुकारना चाहिए। अब उसके ख़िलाफ़ खुद उन्हीं के घर का हवाला मुलाहज़ा फ़रमाइए –

मदद कर ऐ करम अहमदी कि तेरे सिवा
नहीं है क़ासिम बेकस का कोई हामी कार

(क़ासइदे कासिमी पेज ८)

ये किसी और का नहीं बानी–ए–देवबंद मौलाना क़ासिम नानोतवी का शे'र है। एक ही शे'र में हर्फ़े निदा से पुकारा भी जा रहा है "ऐ करम अहमदी" और ग़ैरुल्लाह से मदद भी मांगी गई है। "मदद कर" और तेरे सिवा के टुकड़े ने तो इस्माईली तौहीद का क़ला–क़मा ही कर दिया! ये सिर्फ़ शे'र नहीं बल्कि देवबंदी अक़ीदे पर एक कारी ज़र्ब है। अब तो फ़िर्क़ा ज़ाग़िया को खुद भी कहना चाहिए कि –

देवबंदी बोलते हैं मगर समझते नहीं।

❖❖❖

१३. हाजत रवा की बहस

कौन देता है देने को मुंह चाहिए
देने वाला है सच्चा हमारा नबी

फ़िर्क़ा ज़ाग़िया के दावे तो बहुत बुलंद हैं। बिलखुसूस अपनी रिआकाराना व नुमाइशी अक़ीदा–ए–तौहीद में तो अपना जवाब नहीं रखते। देवबंदी शरीअत में किसी को हाजत–रवा समझना बहुत बड़ा पाप है। चुनांचे खुश–अक़ीदा मुसलमान अगर "**अग़िस्नी या रसूलुल्लाह**" या ऐसे ही

(१) जिनकी शरीअत में कौवा खाना हलाल व सवाब है उन्हीं को 'फ़िर्क़ा ज़ाग़िया' कहा जाता है।

"यागौसुलमदद" कहता है तो फ़िर्का ज़ागिया ऐसे मुसलमानों को मुश्रिक कहता है। नबी, रसूल, ग़ौस, इमाम, ख़्वाजा के साथ तो जनाब का यही दस्तूर है कि उन्हें हाजत–रवा न समझो, न कहो। लेकिन जब अपने उलमा की बारगाह में पहुंचे तो क़ानून की धज्जियां उड़ गईं। जहां न क़ानून को अमान है न ज़ाब्ते को पनाह। हवाला मुलाहज़ा फ़रमाइए। पसीना पोछिये अपनी जबीं से।

हवाइजे दीन व दुनिया के कहां ले जाएं हम यारब
गया वो क़िब्ला-ए-हाजाते रूहानी व जिस्मानी

('**मरसिया गंगोही**' पेज८)

बीच चौराहे पर सद्र देवबंद की रिआकाराना तौहीद परस्ती का भांडा फूट गया। उसे अंधेर न कहा जाए तो क्या कहा जाए कि जिस ख़ुदा से बग़ावत की जा रही है उसी से दरयाफ़्त भी किया जा रहा है। जब तुमने अपने ही आक़ा को हाजत–रवा बना लिया तो फिर ख़ुदा से पूछने के क्या मानी? किसी और देवबंदी गुरगे से मालूम करो कि गंगोही–जैसा हाजत–रवा तो जाता रहा। अब दस्तगीरी व हाजत–रवाई का ओहदा व मंसब किसे तफ़वीज़ किया जाए। नाज़िरीन ही इंसाफ़ फ़रमाएं क्या इस वाज़ेह हक़ीक़त के बाद भी नहीं कहा जा सकता है कि –

देवबंदी बोलते हैं मगर समझते नहीं

१४. हज़रत मसीह को भी चैलेंज

अब बात चल पड़ी है तो आब्ला पाई का शिकवा किया। कुछ दूर और सही! ये राह तवील तो है मगर देवबंदी लताफ़त व ज़राइफ़ ने ज़ेहनी व तबई तफ़रीह के रंगारंग असबाब फ़राहम कर दिए हैं। लीजिए उनकी नासमझी का एक और हवाला मुलाहज़ा फ़रमाइए –

मुर्दो को ज़िंदा किया और जिंदों को मरने न दिया
इस मसीहाई को देखें ज़री इब्ने मरयम

मरसिया गंगोही साहब

हज़रत ईसा इब्ने मरयम के मुक़ाबिल लंगोट बांधे खड़े हैं कि ऐ मसीह! आपने तो सिर्फ़ मुर्दों को ज़िंदा किया मगर कौआख़ोर मौलाना गंगोही का कमाल तो ये था कि मुर्दा तो ज़िंदा करते और ज़िंदा करके मरने न देते।

अब उन्हीं से दरयाफ़्त कीजिए कि जब आपके मौलाना किसी को मरने ही नहीं देते थे तो जलाने के लिए मुर्दे किस मरघट से लाए जाते थे। इसीलिए कहा जाता है कि देवबंदी बोलते हैं मगर समझते नहीं!

❖❖❖

१५. शफ़ाअत की बहस

अजब हसरत से आसी कह रहा था कल मदीने में
शफ़ाअत होगी पहले हश्र में या मुस्तफ़ा(स०) किस की

इसे इफ़राते अक़ीदत और जज़्बा–ए–इश्क़ व मुहब्बत की फ़रावानी कहिए या ग़ालिब की ज़बान में बुल–हवसी से ताबीर कीजिए। ये आपका अपना इख़्तियार है। मगर ये तस्लीम ही करना पड़ेगा कि आक़ा–ए–काइनात स॰ के लिए जिन फ़ज़ाइल व मुहासिन के तसलीम करने में ये जब्र व इकराह ही महसूस नहीं करते बल्कि इसका इन्कार और इसकी मुज़ाहमत ही को असल दीन समझते हैं। ठीक उन्हीं मुहासिन को चुन–चुन के अपनी फ़ंकाराना चाबुक्दस्तियों के तेहत बड़ी ख़ामोशी से अपने आक़ाओं के हक़ में इस्तेमाल करते हैं।

एक हवाला मुलाहज़ा फ़रमाइए –

हिदायत के लिए आए थे यां पाकर फ़राग़त अब
गए हैं ता करें वां मग़्फ़िरत की मीर सामानी

मआज़ल्लाह! सद बार मआज़ल्लाह! ख़ुदा अपनी पनाह में रखे। जिसके धर्म में स॰ आलम स॰ के मुतअल्लिक़ अवाम को ये ज़ेहन दिया जाए कि सरवरे कौनेन स॰ को ख़ुद अपना हाल नहीं मालूम और वो तो अपनी बेटी फ़ातिमा के भी काम नहीं आएंगे वग़ैरा ज़ालिक।

इसी ख़ानासाज़ अंबेठवी धर्म और रशीदी मिल्लत में ये कहा जाए कि गंगोही साहब दुनिया का काम ख़त्म करके अब वहां शफ़ाअत व मग़्फ़िरत की मीर सामानी के फ़राइज़ अंजाम देने गए हैं। आख़िरश! ये ज़ेहन व फ़िक्र का कैसा तज़ाद है कि एक ही मौज़ू पर कहीं नोके क़लम से शरारे फूट पड़े और शख़्सीयत के बदल जाते ही फूल व शबनम का छिड़काव होने लगा। उससे ज़्यादा मुंह बोलती मिसाल और क्या हो सकती है कि

ये ज़ालिम बोलते हैं मगर समझते नहीं!

अगर गंगोही के बारे में ज़ेहन देना था तो नबी मुहतरम स॰ के बारे में ज़हर अफ़शानी नहीं करनी थी और आका–ए–काइनात स॰ से मुतअल्लिक़ जब अक़ीदे का कोढ़ फूट चुका था तो यहां इसी को अपनी ज़बान से चाट क्यों रहे हो? (ये सज़ा नहीं तो और क्या है?) ये तज़ाद उसका नतीजा है मगर समझते नहीं! **'तक्वीयतुल-ईमान'** का हवाला मुलाहज़ा कर लीजिए ताकि ज़ेहन में कोई ख़ल्जान न रह जाए।

> **''सो उन्होंने सब को अपनी बेटी तक को खोल कर सुना दिया. ....और अल्लाह के यहां का मामला मेरे इख़्तियार से बाहर है। वहां मैं किसी की हिमायत नहीं कर सकता और किसी का वकील नहीं बन सकता।''** **(तक्वीयतुल-ईमान, पेज ३२)**

रसूले करीम अलैहित्तहीय्याः वत्तसलीम न किसी की हिमायत कर सकते हैं न किसी की वकालत मगर गंगोही साहब मरने के बाद मग़्फ़िरत की मीर सामानी को वहां पहुंच गए।

ये देवबंदी धर्म है

१६. जहन्नम की आग और रौशनी

'बराहीने-क़ातिआ' मौलाना ख़लील अहमद अंबेठवी की एक मारकतुलआरा तस्नीफ़ कही जाती है जो मौलाना गंगोही की मुसद्दक़ा है। इसका एक हवाला मुलाहज़ा फ़रमाइए और उनकी मालूमात व मुबलिग़ इल्म को दाद दीजिए।

> **और बसबब नाराज़ी हक़ तआला मौजिब ज़ुलमात और नारे जहन्नम की रोशनी दिखाने वाली है। (बराहीने क़ातेआ। स.१८)**

मालूम होता है कि अभी सीधे जहन्नम ही से चले आ रहे हैं। फ़रमाते हैं कि जहन्नम की आग रौशनी दिखाने वाली है। हालांकि अनस व हज़रत अबू–बक्र रज़िअल्लाहु तआला अन्हु की सही हदीस है **नारु जहन्नमा सौदावु मुज़्लिमतुन** जहन्नम की आग काली अंधेरी है। **ला यज़ीयु लहबिहा।** उसकी लपट में रौशनी नहीं है **कल्लैलुल-मुज़्लिम।** जैसे अंधेरी रात।

हदीसे मुबारक का मफ़हूम ज़ाहिर कर दिया गया। अब ये देखिए खुदा क्या फ़रमाता है? खुदाए ज़ुल्जलाल ये फ़रमाता है–

"वमल्लम यजअ़लल्लाहु नूरुन फ़मालुहू मिन नूरेही।"

जिसके लिए अल्लाह ने नूर न रखा उसे असलन रौशनी न मिलेगी। अंधेरी और रौशनी देने वाली आग तो जलाने में दोनों यक्सां हैं। मगर अव्वल अज़ाबे महज़ है। दूसरी में रौशनी नेमत है। अगर जहन्नम में रौशनी हो तो काफ़िर के लिए आख़िरत में नेमत का हिस्सा हुआ और अल्लाह अ़ज्ज व जल्ल फ़रमाता है **"वमा लहू फ़िल-आख़िरति मिन ख़लाक़"** आख़िरत में उस का कुछ हिस्सा नहीं।

अब नाजिरीन खुद कुरआन मजीद और हदीसे मुबारका की रौशनी में फ़ैसला फ़रमाएं कि जो कह रहा हो कि नारे जहन्नम की रौशनी दिखाने वाली है वो समझ के बोल रहा है या बिन समझे। अगर बिन समझे बोल रहा है तो सब लोग बयक आवाज़ कहिए।

देवबंदी बोलते हैं मगर समझते नहीं

१७. हिफ़्जुल-ईमान की बहस

मौलाना अशरफ अली थानवी जिन्हें खुद इसका एतराफ़ है कि उनका नाम मकरे अजीम है। गोया बोल तो गये हैं मगर समझे नहीं। उनकी एक मारकतुल आरा रुस्वाए ज़माना तस्नीफ़ **'हिफ़्ज़ुल-ईमान'** है। उसका एक हवाला मुलाहज़ा फ़रमाईये–

फिर यह कि आपकी जाते मुक़द्दसा पर इल्मे ग़ैब का हुक्म किया जाना अगर बकौल ज़ैद सही हो तो दरयाफ़्त तलब या अम्र है कि इस गैब से मुराद बाज़ ग़ैब है यह कुल। अगर बाज़ उलूम ग़ैबिया हैं तो उसमें हुजूर की क्या तख़्सीस है? ऐसा इल्म ज़ैद या उमर बल्कि हर सबी, मज़नून बल्कि जमी बहाइम के लिए हासिल है। (हिफ़्ज़ुल-ईमान पेज ७)

गोया जो इल्म जानवर, पागल, मजनूं वगैरा का है ऐसा ही रसूले करीम अलै० का भी है। मआज़अल्लाह! अब आप उनसे कभी दरयाफ़्त कीजिये कि

आप हज़रात अपने को वारिसे नबी कहते हैं इसके क्या माना? जबकि सय्यदे आलम स॰ ने इरशाद फ़रमाया कि मुझसे विरासत न चलेगी तो यकीनन वह यही जवाब देंगे कि विरासत न चलने का मफहूम यह है कि उलमा इल्मे नबी के वारिस हैं। आपके नबी का इल्म जानवर, पागल, मजनून ऐसा है तो फरमाईये आपको विरासत में कौन–सा इल्म मिला? जब आपके नबी ही का इल्म जानवर–जैसा है तो आप का इल्म भी जानवर वाला ही होगा। इसी को कहते हैं कि –

उलझा है पांव यार का जुल्फे दराज़ में

देवबन्दी बोलते हैं मगर समझते नहीं

नबी का इल्म कैसा है यह तो बाद की बात है। मगर खुद आपके कानून ने खुद आपको फांसी के तख्ते पर चढ़ा दिया। क्योंकि आप अपने मुसल्लमात से इन्कार नहीं कर सकते। इसलिए यह मुतअय्यन हो गया कि उलमा–ए–देवबन्द जानवर, पागल , मजनून, चौपाए ऐसा है।

१८. काफ़िर कहने की बहस

यह इन्सान का रोज़मर्रा है कि उसूल व मुसल्लमात की बात कही जाए तो उसे वह सुनता है मगर कुछ ज्यादा ध्यान नहीं देता। लेकिन मुसल्लमाते के ख़िलाफ़ अगर कोई बात कही जाए तो सभी के कान खड़े हो जाते हैं। एक लाख बार कहिये कि शराब हराम है। सुनने वाले यही कहेंगे यह तो वही पुरानी बा़त है। लेकिन मआज़अल्लाह! अगर कोई शराब की हुरमत का इन्कार कर दे तो मस्जिद से मयख़ाने तक यह बात फैल जाएगी। पचपन लाख बार कहिये कि फोटू खींचना, फोटू खींचवाना हराम है। लोग सुनी–अनसुनी बराबर कर देंगे लेकिन मआज़अल्लाह! सद बार मआज़अल्लाह! आज अगर कोई यह फ़त्वा दे दे कि फोटू खींचवाना दुरुस्त है तो अस्रे हाज़िर का वह तबक़ा जो अपने को रौशन ख़्याल समझता है वह झट से बोल पड़ेगा कि अपने वक़्त का कोई मुजद्दिद पैदा हुआ है। बहुत–सी शोहरत पसंद तबीअतें इस तकनीक को इस्तेमाल करती रहती हैं। कुछ हो या न हो इस बहाने शोहरत तो होती रहती है।

पूरी दुनियाए इस्लाम उस ज़ाब्ते को तस्लीम करती है कि मोमिन को मोमिन कहा जाए, मुनाफ़िक़ को मुनाफिक, इन्सान को इन्सान और काफिर

को काफिर। चुनांचे कुरआन मजीद का तरीक़ा–ए–ख़िताब यही है कि जब वह आम इन्सानों को मुख़ातब करता है तो वह कहता है **कुल या ऐयुहन्नासु इन्नी रसूलुल्लाहि इलैकुम जमीआ़** और मुनाफिक़ को मुनाफिक कहता है। मसलन।" **इज़ा जाअकल-मुनाफ़िक़ू न। अलख़।** और मोमिन को मोमिन कहता है। मसलन **या ऐयुहल्लज़ी न आमनू इल्ला तरफ़ऊ असवातकुम फ़ौ क़ सौतिन्नबीय। अलख़।** और काफिर को काफिर कहा जाता है। मसलन **कुल या ऐयुहल-काफिरून। अलख़**

बाज़ देवबन्दियों ने यह महसूस किया अगर हमने वही कहा जो कुरआन कह रहा है तो उसमें कोई खास बात न पैदा होगी। लिहाज़ा कोई ऐसी बात कहो कि जिसमें सब मुख़ातब हो जाएं। चुनान्चे कुरआन के खिलाफ़ नारा बुलन्द किया कि काफ़िर को भी काफ़िर मत कहो। यही वह मक़ाम है जहाँ मैं कहता हूँ कि बोल रहे हो मगर समझ नहीं रहे हो। इसलिए कि जब तुम यह कह रहे हो कि काफ़िर को भी काफ़िर मत कहो तो इसकी मिसाल ऐसे ही है जैसे यह कहा जाए अंधे को अंधा न कहो। यानी है अंधा मगर कहो मत। लंगड़े को लंगड़ा न कहो। यानी है लंगड़ा मगर कहो मत। बस इसी तरह काफ़िर को भी काफिर न कहो। यानी है वह काफिर मगर कहो मत। जनाब ने तो पहले उसे खुद काफिर कह दिया। जब आप उसे खुद ही काफिर कह रहे हैं तो दूसरों को मना करने का हक़ कहां रह गया? इस खुली हुई हकीक़त के बाद भी क्या नहीं कहा जा सकता –

कि देवबन्दी बोलते हैं मगर समझते नहीं

कुल या ऐयुहल-काफिरून में खुदा तो रसूल करीम अलै० को हुक्म दे रहा है कि आप काफिर को काफिर ही कहो। अब नाज़िरीन ही फैसला फरमाएं कि बात '**तक़वीयतुल-ईमान**' की मानी जाए या कुरआन की?

१६. ग़ैर-खुदा से लेने की बहस

फिर्क़ा ज़ागिया जब अपनी तौहीद परस्ती का ढोंग रचाता है तो न पूछिये उसकी उड़ान का आलम मास्को और न्यूयॉर्क के रॉकट भी पीछे रह जाते हैं। इस मुल्क में इसका एक खोखला नारा यह भी है कि हमें जो लेना होगा खुदा से लेंगे। अब इस बे–बुनियाद, ग़लत और झूठे दावे के मुकाबिल

में कुरआन हकीम का एक वाजेह व गैर–मुबहम एलान मुलाहज़ा फ़रमाईये। कुरआन मजीद का इरशाद है –

वमा अताकुमुर्रसूलु फ़ख़ुज़ुहू वमा नहाकुम अन्हु फन्तहू।

फ़िर्का जागिया का कहना है कि हमें जो लेना होगा हम खुदा से लेंगे। वही देने वाला परवरदिगार फरमाता है कि तुम्हें वही लेना पड़ेगा जो मेरा नबी तुम्हें देगा। क्या अब भी ज़ेहन के किसी गोशा में शुब्हा रह गया कि देवबन्दी बोलते हैं मगर समझते नहीं। यह भी कह लीजिये कि कुरआन पढ़ते हैं मगर समझते नहीं।

२०. इस्तिआनत की बहस

इसी तरह इब्लीसी तौहीद के ठेकेदारों का यह भी गुमान है कि खुदा के सिवा किसी और से मदद न मांगी जाए जिसकी शहादत में सूरह फातिहा की यह आयत पेश की जाती है। **इय्या क नअ़बुदु व इय्या क नस्तईन।**

यह हुक्म सर व आखों पर **बिहम्देही तआला** हर खुशअक़ीदा सुन्नी हंफ़ी मुसलमान अपनी पंज–वक़्ता नमाजों में हंफी तरीक़ा पर क़िरअत करता है। लेकिन इसी कुरआन में दूसरे मक़ाम पर यह भी **या ऐयुहल-लज़ीना आमनुस्तईनू बिस्बरे वस्सलात** इसे हर दानिशवर अच्छी तरह जानता है कि सब्र और नमाज़ अल्लाह नहीं। बल्कि ग़ैरुल्लाह हैं। नमाज़ खुदा के लिए पढ़ी जाती है। मगर खुदा नहीं है। नतीजा साफ जाहिर है कि अल्लाह तआला ग़ैरुलल्लाह से मदद मांगने का हुक्म दे रहा है। लिहाज़ा अब यह हक़ीक़त आफ़ताब से ज्यादा रौशन हो गई कि सब्र और नमाज़ जो ग़ैरुल्लाह हैं जब उनसे मदद मांगी जा सकती है। तो अल्लाह तआला के वह प्यारे महबूब बन्दे जिन्हें देख कर सब्र और नमाज़ याद आ जाए। ईमाम हुसैन जैसे साबिर और सुलतान–अल हिन्द जैसे नमाज़ी से मदद क्यों नहीं मांगी जा सकती? इसका यक़ीं हो गया कि देवबन्दी बोलते हैं मगर समझते नहीं।

२१. फ़त्वा-नवेसी का मज़्हकाख़ेज़ अन्दाज़

मौलाना रशीद अहमद साहब गंगोही उलमा–ए–देवबन्द के एक मोअतमद मोहद्दिस और मुफ़्ती हैं। मौसूफ़ के तआरुफ़ में इतना लिख देना काफी है

कि जनाब ही ने फ़त्वा दिया है कि कौआ खाना सवाब है। चौदह सदी में जो किसी से न हो सका, वह आपने कर दिखाया। यह सवाल हमेशा उलमा–ए–देवबन्द पर बाक़ी रहेगा कि मौलाना गंगोही के अलावा और किसी इमाम व मुजतहिद ने अगर कौआ खाने को सवाब लिखा हो तो हवाला पेश कीजिये। अगर मीलाद व क़याम की दलील मांगी जा सकती है तो "कौआ" के हलाल व सवाब पर दलील क्यों नहीं मांगी जा सकती? बहरहाल मौलाना गंगोही का एक जवाब मुलाहजा फ़रमाईये।

गंगोही साहब : "हिन्दू का दिया हुआ चन्दा मस्जिद में सर्फ करना दुरुस्त है जबकि वह बनीयते सवाब देता है"

('फ़तावा रशीदिया' कामिल पेज ४१६)

ग़ौर फ़रमाईये हिन्दू और बनीयत कुफ्र और सवाब का बेजोड़ पैवंद। उसे तो आम मुसलामान जानते हैं कि काफिर अह्ले नीयत नहीं। यह इबारत ऐसी है जैसे मौलवी इस्माईल देहलवी ने कहा" झूठे मुसलमान सच शिर्क में गिरफ़्तार हैं।' **'तक़्वीयतुल-ईमान'** में इस्लाम और शिर्क का इज्तिमा और फ़तावा रशीदीया में कुफ्र और सवाब का इज्तिमा। यह वह इलल व अस्बाब हैं जिनकी बिना पर कहा जाता है कि देवबन्दी बोलते है मगर समझते नहीं।

आठवां बाब

उलमा-ए-देवबन्द के ख़्वाबों का महल

मेरी हयात का अफ़साना देखने वालो
कहीं-कहीं से ये क़िस्सा पढ़ा नहीं जाता

एक सदी पेशतर न तो देवबन्दीयत का वुजूद था और न ही उस नाम से कोई आशना था कि देवबन्दीयत किस चिड़िया का नाम है। लगभग एक सदी की ये पैदावार हैं। ये उन्हीं फ़िर्क़े बातिला से हैं जिसकी पेशीनगोई आज से तेरह सदी पेशतर नबी–ए–मुहतरम, मुख़्बिरे सादिक़ अलैहिस्सलात वत्तसलीम की ज़बाने फ़ैज़ तरजमान दे चुकी है। सरवरे कौनेन स॰ का ये फ़रमान वाजिबुल–इज़्आन कि मेरी उम्मत में तहत्तर (७३) फ़िर्क़े होंगे उनमें एक नाजी होगा बाक़ी सब–के–सब जहन्नमी। इस इरशादे हुमायूं पर सहाबा–ए–किराम रज़िअल्लाहु तआला अन्हुम ने अर्ज़ किया : या रसूलुल्लाह! वो फ़िर्क़ा नाजी कौन होगा? सय्यदे आलम स॰ ने इरशाद फ़रमाया **व मा अ न अलैहि व असहाबी** जिससे मुराद अह्ले–सुन्नत व जमाअत हैं। अब जहां कहीं भी किसी फ़िर्क़ा का पैदा हाना बोला जाए यक़ीन कर लेना चाहिए कि पैदा होना बजाए खुद इसकी दलील है कि किसी नये फ़िर्क़े ने जन्म लिया है। इसी पैदा होने वाले जहन्नमी तब्क़े की ख़बर दी गई है। अगर ये वही पुराना होता तो उसे पैदा होना न बोला जाता। यक़ीन जानिये! अगर ये नये फ़िर्क़े न पैदा होते तो सय्यदे आलम स॰ ने जो पेशीनगोई दी है हम इसकी शहादत व दलील कहां से लाते? उसे हुस्ने इत्तफ़ाक़ कहिए या ताईदे ग़ैबी कि मुंकिरीने इल्मे ग़ैब ही आक़ाए काइनात स० के आलिमुलग़ैब होने की दलील हैं। जिन्होंने इमानियात व एतक़ादियात, मुहिम्माते इस्लाम व ज़रूरियाते दीन से इंकार व इंहराफ़ किया है और यही किसी भी नये फ़िर्क़े की अलामत व पहचान है। ऐसे अस्हाबे ख़ैर जो किसी कलीदी व असासी इख़्तिलाफ़ के बग़ैर अवामी रुश्द व हिदायते क़ुरआन फ़हमी, दीन–शनाशी, इस्लामी अहकाम व मसाइल की तशरीह व तौज़ीह और तज़्किया–ए–क़ल्ब वग़ैरा के लिए नई राहें हमवार की हों तो उन्हें 'फ़िर्क़ा' नहीं कहा जाएगा बल्कि ये इस तबक़े अह्ले–सुन्नत व जमाअत के अलग–अलग मोयदीन व हामीईन हैं। गोया ये ऐसी नहरें हैं जो उसी बड़े

दरिया से लेकर दूसरों को सैराब कर रही हैं। मुझे कहना ये है कि देवबंदियत जिसका नाम है उसकी उम्र एक सदी से ज़ायद नहीं। जिसने तंकीसे रिसालत और तौहीने नुबुव्वत पर अपने मज़हब की बुनयाद रखी है। चुनांचे ये अंबिया व रुसुल की तारीफ़ व तौसीफ़ को जुर्म व पाप समझते हैं। अलबत्ता अपने आक़ाओं के मुहासिन की तलाश में सरेगरदां रहते हैं। इसका कोई सवाल ही नहीं पैदा होता कि कुरआन व हदीस में वो मुहासिन तलाश किए जाएं। लिहाज़ा इस तब्क़े ने उसकी आसान सूरत ये निकाली कि रात को ख़्वाब देखो और सुबह प्रेस के हवाले कर दो। चुनांचे अगर उनके सपनों को इक्टठा किया जाए तो कई जिल्दों पर मुशतमिल बड़ी ज़ख़ीम किताब होगी। ये मुख़्तसर-सी किताब उसकी मुतहम्मिल नहीं। इसलिए अपने इस दावे की शहादत में दो चार मिसालें हदिया-ए-नाज़िरीन करता हूँ ताकि आप उनके ख़्वाबों के महल को इसी पर क़्यास कर सकें। अब वरक़ उलटइए और चंद हवाले मुलाहज़ा फ़रमाइए –

हवाला.........

''एक सालेह फ़ख्रे आलम अलैहिस्सलाम की ज़्यारत से मुशर्रफ़ हुए। आपको उर्दू में कलाम करते देख कर पूछा : आपको ये कलाम कहां से आ गई? आप तो अरबी हैं। फ़रमाया : जबसे उलमाए मदरसा देवबंद से हमारा मामला हुआ हमको ये ज़बान आई।'' (बराहीने-क़ातिआ पेज २६)

दोस्तो! इसी का नाम है देवबंदी धर्म। अव्वलन इसका किस तरह यक़ीन किया जाए कि इसे ख़्वाब में देखा गया। ये इख़तरा महज़ और मनघड़त भी तो हो सकता है?

अच्छा चलिये! हमने मान लिया कि किसी ने ऐसा देखा तो ख़्वाब ही तो था। ये कुरआन की कोई आयत या बुख़ारी की कोई हदीस तो नहीं जिसकी इशाअते कुरआन व हदीस के हमपल्ला हो। आपने पंजसूरा की तरह उसे छापना क्यों शुरू कर दी। महज़ इसलिए कि उसमें आपके मदरसा देवबंद की बड़ाई थी और उर्दू ज़बान में सय्यदे आलम स॰ के शार्गिद होने की शहादत। **अल-अयाज़ बिल्लाह मिन ज़ालिक!** अपने गिरेबान में मुंह डाल कर सोचो कि अगर ऐसा देखा भी गया तो इस नापाक ख़्वाब की इशाअत क्यों हो रही है? अगर आपके यहां ख़्वाब की इतनी ही अहमियत है कि कुरआन व हदीस और फ़िक्ह: इस्लामी की तरह उसे छापा

ही जाए तो फिर हम लोगों को भी इजाज़त दीजिए कि आप लोगों से मुतअल्लिक़ हमें जितने भी ख़्वाब नज़र आएं हम उसे छापते रहें। एक बार की इशाअत के बाद हम उसे न छाप सकें तो बग़ैर किसी ''रॉयल्टी'' के हम इसका हक़्क़े इशाअत आपको दे देते हैं कि आप उसे लाखहा–लाख की तादाद में छापते रहें और इस का यक़ीन रखिए वो जितने भी ख़्वाब होंगे किसी मर्दे सालेह ही के होंगे, ग़ैर सालेह के नहीं। मगर उसकी ज़मानत हमें मिलनी चाहिए कि हमारे वो ख़्वाब जो आपसे मुतअल्लिक़ होंगे इसकी इशाअत को आप बुरा न मानेंगे। चूंकि हम इसे अच्छी तरह जानते हैं कि सय्यदे आलम स॰ की बारगाह में आप हज़रात जितने ही शोरीदा सर हैं उसी क़दर अपने आक़ाओं के हुज़ूर बड़े नाज़ुक मिज़ाज हैं।

कहां हैं देवबंद के वो भगोड़े[१] जिन्हें बरैली में पनाह मिली। जिसके इज़्हार तशक्कुर में '**देवबंद से बरैली तक**' मंज़रे आम पर आई। हद ये है कि अभी मुंह से छट्ठी के दूध की बू आ रही है और रिसाला '**अल इम्दाद**' की वो इबारत जो आग व अंगारा उगल रही है। उस पर पानी का छिड़काव करने चले हैं। हालांकि अबसे पहले न जाने कितने अकाबिरे देवबंद के दामन उसी की तपिश से झुलस के ख़ाक हो गए और अब ये तिफ़्ले मक्तब अपने आंसू की चंद बूंदें लिए खड़े हैं गोया ''मेंढकी'' को भी जुकाम हुआ। तिफ़्लाना मिज़ाजी का ये आलम है रिसाला '**अल-इम्दाद**' की वो इबारत जो ख़्वाब व बेदारी दोनों पर मुशतमिल है वो सिर्फ़ ख़्वाब नहीं है बल्कि ख़्वाब व बेदारी पर मुशतमिल एक वाक़िया है। मैं नहीं फ़ैसला कर सका कि आपकी फ़रेबखूर्दगी है या फ़रेब–दही? मुझे हैरत है कि एक किताब जो दज्ल व फ़रेब और सुक़्म व ख़राबियों की पुलिंदा हो उस पर क़ारी तैय्यब साहब जैसी जिम्मादार शख़्स की तक़रीज़ है। महसूस हुआ इस हम्माम में सभी नंगें हैं वरना ख़्याल फ़रमाइए मौलाना अबुलऔसाफ़ साहब ने '**हिफ़्ज़ुल-ईमान**' की कुफ़्री इबारत की सफ़ाई में जो दाव इस्तेमाल किया है उसने तो उन्हें बिलकुल ही नंगा कर दिया।

'**हिफ़्ज़ुल-ईमान**' की नज़ाई इबारत मुस्तक़िलन एक जगह जनाब ने दर्ज नहीं क्या बल्कि टुकड़े-टुकड़े में उसकी सफ़ाई पेश की। हालांकि तस्नीफ़ व तालीफ़ का मुरव्वज दस्तूर ये है कि पहले असल इबारत पेश की जाए फिर अलाहदा-अलाहदा टुकड़ों की सफ़ाई दी जाए। मगर यहां तो

(१) जो देवबन्द से भागे तो बरेली में पनाह मिली। (२) देवबन्दियों के नज़्दीक

पूरी इबारत पेश करते हुए कलेजा कांप रहा था कि इस फूहड़ व गंदी इबारत को पढ़ने के बाद कोई सफ़ाई सुनने के लिए आमादा न होगा। ये दिल का वो चोर है जो सबकी गिरफ़्त में नहीं आता।

बहरहाल मुझे ये अर्ज़ करना है कि अगर हर ख़्वाब की इशाअत देवबदी धर्म में ज़रूरी है तो इससे हमारी जमाअत को आगाह किया जाए ताकि आप हज़रात की खुश्नूदी–ए–मिज़ाज की ख़ातिर वो सारे ख़्वाब इकट्ठा करके '**तोहफ़ा-ए-बरैली**' के उन्वान से आप हज़रात को सपुर्द कर दिए जाएं। आपको लुत्फ़ भी आएगा और हमारा एहसान भी मुसल्लत रहेगा। हर चंद कि हम कभी एहसान जताएंगे नहीं! खिचड़ीख़ोर पालन साहब को होश में रहना चाहिए जो अपने झोले में लिए फिरते हैं वो हमारे सब्र व शकीब का इम्तिहान न लें। हमारी जमाअत इतनी नीची सतह पर उतरना पसंद नहीं करती। वरना जिस दिन ख़्वाबों के ज़ेरे उन्वान अह्ले–सुन्नत का क़लम शरारा उगलेगा वो बड़ा ही भयानक दिन होगा।

देवबंद से हमारे उसूली इख़्तिलाफ़ात हैं और अकाबिरे देवबंद की तौहीन आमेज़ इबारात पर हमारा मवाख़ज़ा व मुहासबा है। इसलिए अगर हिम्मत व हौसला हो तो उन इबारात की सफ़ाई देकर क़ौम को मुत्मइन कर दीजिए। हम आपके रुजू और तौबा के बाद गले लगाने को तैयार हैं। मगर उसकी इशाअत से ज़िंदा मक्खी निगलने की कोशिश न कीजिए जिसके हज़म करने में कई हॉस्पिटल दरकार हों। सुख़न–गुस्तराना बात आ गई जिसका मैंने ज़िक्र कर दिया वरना ये किसी किताब का जवाब नहीं है।

बहरहाल ये उलमा–ए–देवबंद की एक टेक्निक है कि अपने आक़ाओं की तारीफ़ और सय्यदे आलम रूही फ़िदाह स॰ की तंक़ीस के लिए अपने ख़्वाबों की इशाअत करते रहते हैं।

हालांकि तंक़ीसे नुबुव्वत के लिए जहां कहीं भी उन्होंने अपना क़लम उठाया है रोशनाई की बूंद मेरे मुस्तफ़ा स॰ के जूते के तल्ले तक नहीं पहुंची। मगर उसने उनके चहरे को ज़रूर सियाह कर दिया।

मुंदर्जा बाला हवाले ही तज्ज़िया कीजिए –

मसलन देखने वाले ने सरवरे कौनेन स॰ से कि आपको ये कलाम कहां से आ गई। ग़ौर फ़रमाईए। कलाम मुज़क्कर है होना ये चाहिए था कि ये कलाम आपको कहां आया? मगर आपके यहां उसका इस्तेमाल मोअन्नस है। गोया ग़ालिब व दाग़ के अहद में जो मुज़क्कर था वो देवबंद पहुंच कर

मुअन्नस हो गया। उर्दू ज़बान में जिसे तज़्कीर व तानीस तक की तमीज़ न हो वो जामेउलकलिम सय्यदुलअरब वलअजम स॰ को उर्दू सिखाने चले। उसे एजाज़े नुबुव्वत ही कहिए कि उस ज़ालिम ने ज़ुबान ही में ठोकर खाई ताकि एक मुब्तदी तालिबे इल्म भी उसका यक़ीन कर सके कि जो तज़्कीर व तानीस में इम्तियाज़ न कर सके वो मुतअल्लिम है या मुअल्लिम? उसे तो अभी ख़ुद सीखना चाहिए वो सिखाने का हक़दार कहां से बन गया! चुनांचे आज तक ये इबारत इसी तज़्कीर व तानीस में भी ख़त्ते इम्तियाज़ नहीं खींच सकती! अलावा अज़ीं आज तक उनका ज़ेहन इस हक़ीक़त तक जा ही न सका कि बिलफ़र्ज अगर ख़्वाब की सेहत तसलीम ही कर ली जाए तो ग़ौर करने का ये मक़ाम है कि सय्यदे आलम स॰ की अपनी ज़बान तो अरबी है आज अरबी के बजाए उर्दू में क्यों इरशाद फ़रमा रहे हैं?

गोया आक़ाए काइनात स॰ आज उसका इज़हार फ़रमा रहे हैं कि मैं तो अरबी ही हूँ मगर मेरा मुख़ातब उस ज़ुबान को न समझ सकेगा। इसलिए मुख़ातब की सुहूलत के पेशे नज़र आज उर्दू ज़बान में बोल कर उसकी भी तौसीक़ फ़रमा रहे हैं। ये नामनेहाद अरबी मदरसा वाले ज़रूर हैं। मगर अरबी ज़बान से जाहिल व नाआशना हैं। उसी के ज़ैल में उसका भी सुबूत फ़राहम कर दिया कि मैं तो हर ज़बान पर क़ादिर हूँ। हत्ता कि सरकार, इन्सान, ऊँट, जिन्न, हिरन, चरिंद व परिंद – सभी की ज़बान समझते थे। जैसाकि अहादीस और तारीख़ व सियर की किताबों से ज़ाहिर है। नतीजे में ये बात कही जा सकती कि उसके अलावा मुशहदा तो झुठलाया नहीं जा सकता। रहमते आलम स॰ की बारगाह में मुख़्तलिफ़ ज़बानों के बोलने और समझने वाले हाज़िर होते हैं और हर मुसलमान अपनी ज़बान में सरकार को मुख़ातब करता है जो इस बात की खुली दलील है कि हर मुसलमान इसका अक़ीदा रखता है कि मुअल्लिमे इंसानियत नबी–ए–मुहतरम स॰ तमाम ज़बानों को जानते और समझते हैं। अब फ़रमाइए आपका मनघड़त ख़्वाब माना जाए या बैनुलअक़्वामी सतह पर मुसलिम बिरादरी का ये ज़िंदा जावेद अक़ीदा तसलीम किया जाए।

आख़री गुज़ारिश है कि अगर ख़्वाबों ही के छापने का शौक़ है तो अपने आक़ाओं की तारीफ़ में ज़मीन व आसमान के क़ुलाबे मिलाइए मगर अंबिया व औलिया, अस्लाफ़ व अक़ाबिर की तौहीन से क़लम को इस हद तक महफ़ूज़ रखिए कि हमारे जज़्बा–ए–अक़ीदत पर उसकी ख़राश तक न आ

सके।बग़ैर किसी मबसूत व मुफ़स्सल तब्सरे के चंद ख़्वाब और मुलाहज़ा फ़रमाएं–

हवाला...............

आला हज़रत यानी हाजी इम्दादुल्लाह साहब ने ख़्वाब देखा कि आपकी भावज आपके मेहमानों का खाना पका रही हैं कि जनाबे रसूल मक्बूल स॰ तशरीफ़ लाए और आपकी भावज से फ़रमाया कि उठ! तू इस क़ाबिल नहीं कि इम्दादुल्लाह के मेहमानों का खाना पकाए। उसके मेहमान उलमा हैं। उसके मेहमानों का खाना मैं पकाऊँगा।'' (तज़्किरतुर्रशीद, पेज ४६)

इसकी ताबीर गंगोही साहब से शुरू हुई। आप ही पहले आलिम हैं जो हाजी साहब से बैअ़त हुए। इंसाफ़ को आवाज़ दो कि अब दिन धाड़े उसका क़त्ले आम हो रहा है। मुलाहज़ा फ़रमाइए अपने आक़ाओं की अज़मत व बर्तरी के इज़्हार में कितनी ऐय्यारी से आक़ा–ए–काइनात रूही फ़िदाह स॰ को अपने मत्बख़ का बावर्ची बना गए। मआज़ल्लाह! सुम्म म मआज़ल्लाह! अल्लाह तआला अपनी पनाह में रखे। ज़ालिमो! वो तुमने सय्यदुल अंबिया हज़रात मुहम्मदे अरबी स॰ को ख़्वाब में देखा होगा वो तुम्हारा ख़ानासाज़ थानवी नबी होगा जिसे तुमने ख़्वाब व बेदारी में रसूल व नबी कहा है। उसका भी हवाला मुलाहज़ा फ़रमाइए।

हवाला..............

''ख़्वाब देखता हूँ कि कलिमा शरीफ़ पढ़ता हूँ लेकिन मुहम्मद रसूलुल्लाह की जगह हुज़ूर ''थानवी''का नाम लेता हूँ। यानी '**लाइला ह इल्लल्लाह अशरफ़ अली रसूलुल्लाह**' इतने में ख़्याल हुआ कि तुझसे ग़लती हुई। दोबारा पढ़ता हूँ। बे–साख़्ता बजाए रसूलुल्लाह स॰ के नाम के अशरफ़ अली निकल जाता है। मुझको इल्म है कि इस तरह दुरुस्त नहीं लेकिन बे–इख़्तियार ज़बान से यही निकलता है। दो तीन बार जब यही सूरत हुई तो हुज़ूर ''थानवी'' को अपने सामने देखता हूँ। इतने में मेरी ये हालत हो गई।''

कॉमा या कौसेन की इबारत तशरीही होती है

कि मैं बवजहे रिक़्क़त ज़मीन पर गिर गया और निहायत ज़ोर के साथ चीख़ मारी और मुझको मालूम होता था कि अंदर कोई ताक़त न रही। इतने में बंदा ख़्वाब से बेदार हो गया लेकिन बेहिसी और असर नाताक़ती बदस्तूर

था। लेकिन ख़्वाब व बेदारी में हुजूर का ख़्याल था। बेदारी में कलिमा शरीफ़ की ग़लती पर ख़्याल आया तो इरादा हुआ कि इस ख़्याल को दिल से दूर किया जाए फिर ऐसी ग़लती न हो जाए। बई ख़्याल बैठ गया फ़िर दूसरी करवट लेट कर कलिमा शरीफ़ की ग़लती के तदारुक में रसूलुल्लाह स० पर दुरूद शरीफ़ पढ़ता हूँ। लेकिन फिर भी ये कहता हूँ **अल्लाहुम्मा सल्ले अला सैयदना व नबीयना व मौलाना अशरफ़ अली** हालांकि अब मैं बेदार हूँ, ख़्वाब नहीं। लेकिन बे-इख़्तियार हूँ, मजबूर हूँ। ज़बान अपने काबू में नहीं। उस रोज़ ऐसा ही कुछ ख़्याल रहा। दूसरे रोज़ बेदारी में रिक़्क़त रही। ख़ूब रोया और भी बहुत-से वुजूहात हैं जो हुजूर के साथ बाइसे मुहब्बत हैं। कहां तक अर्ज़ करूँ।''

थानवी साहब का जवाब मुलाहज़ा फ़रमाइए –

जवाब : कि इस वाक़िआ में तसल्ली थी कि जिसकी तरफ़ तुम रुजू करते हो वो बेऐनिही तआला मुत्तबा-ए-सुन्नत है।''

रिसाला '**अल-इम्दाद**' माहे सफ़र १३३६ हिज्री, पेज ३५[१]

अब तो यक़ीन कर लीजिए कि हाजी इम्दादुल्लह साहब के मेहमानों का खाना पकाने के लिए थाना भवन के यही बनासपत्ती नबी हाज़िर हुए थे। अक्सर ऐसा भी होता है कि ख़्वाब से बेदार होने के बाद तमाम बातें अच्छी तरह याद नहीं रह जातीं। चूंकि थानवी साहब को हाजी साहब और गंगोही साहब दोनों ही से रिश्ता-ए-अक़ीदत है। इसलिए इसका क़वी इम्कान है कि जनाब ही पहुंचे होंगे और इस फ़न में आंजनाब को मलका भी था। चुनांचे '**बहिश्ती ज़ेवर**' उठा के देखिए कि कबाब बनाने का तरीक़ा, गोश्त गलाने का तरीक़ा – ग़र्ज़ कि एक माहिरे फ़न की तरह बावर्चीख़ाने के सारे उसूल व ज़वाबित दर्ज कर दिए हैं। उसे तो मसअला-मसाइल की किताब के बजाए साबुन फ़ैक्ट्री और भटयारख़ाने का दस्तूरे असासी कहा जाना चाहिए! पहले सब्र व शकीब का दामन थामिए उसके बाद वरक़ उलटिए। एक ऐसी दिलख़राश व नंगे इंसानियत इबारत जो क़ाबिले गर्दन ज़दनी है अगर अह्दे फ़ारूक़ी होता तो उन्हें कैफ़रे किरदार तक पहुंचा दिया गया होता।

''एक सालह को मकशूफ़ हुआ कि अहक़र (अशरफ़ अली थानवी) के घर में हज़रत आइशा आने वाली हैं। उन्होंने मुझसे

(१) सुलतान पुर के मुनाज़रा में रिसाला अल-इमदाद गुम हो गया था मगर ख़ुदा का शुक्र उसे मैंने फिर हासिल कर लिया।

कहा। मेरा जेहन मअन इस तरफ़ मुंतकि़ल हुआ कि कम्सिन औरत उसके हाथ आएगी। इस मुनासबत से कि हुज़ूर स॰ ने हज़रत आइशा से निकाह किया तो हुज़ूर का सिन शरीफ़ पच्चास से ज़्यादा था और हज़रत आइशा बहुत कम उम्र थीं। वही कि़स्सा यहां है।" (रिसाला अल-इम्दाद सफ़र ३५ हि॰)

चूंकि मौलाना थानवी ने अपनी एक कम्सिन शागिर्दा या मुरीदा से शादी की थी इसलिए अवाम को पट्टी पढ़ाने के लिए ख़्वाब के अलावा कु़रआन की आयत तो मिल नहीं सकती थी। बस उसका आसान तरीक़ा यही था कि ख़्वाब देखा जाए उसे छाप कर अपने मुतवस्सिलीन को मुतमइन किया जाए।

देवबंदी अवाम का ज़ेहन व फ़िक्र भी ऐसा मफ़लूज और लाइलाज–सा है कि मीलाद व क़याम के सुबूत में हदीस पेश कीजिए तो बर्जस्ता बोल पड़ेंगे ये तो हदीस ज़ईफ़ है लेकिन अपने आक़ाओं के मनाकि़ब व महासिन में मनघड़त ख़्वाबों को वो सूरा **यासीन** और सूरा **रहमान** से कम नहीं समझते। मआज़ल्लाह!

मुंदर्जा बाला हवाला कोई तब्सरा नहीं चाहता। ऐसी नंगी इबारत को तब्सरा का लिबास पहनाना भी तज़ीअ्–ए–औक़ात का मुतरादिफ़ है। बस उसे पढ़ लीजिए और अपनी बेकसी व मज़लूमी का शिद्दत से एहसास करके उसका फ़ैसला कीजिए कि खुदा की बिछाई हुई ज़मीन पर हमसे भी ज़्यादा कोई मज़लूम है। हद है! ग़ैर तो ग़ैर ठहरे आज जो सुन्नियों का लिबादा ओढ़े हैं उनमें भी कुछ ऐसे मुनाफ़िक़ हैं जिनका मिशन ये है कि अब उन मसाइल को न छुआ जाए। उन ज़ालिमों से दर्याफ़्त करो कि कोई तुम्हें कुछ कह दे तो उससे जन्म भर इंतक़ाम लेते रहो, उसकी तौबा न क़बूल करो और ऐसे सरकश नाफ़रमान जो आक़ाए दो जहां स॰ और उम्मुल–मुमिनीन सय्यदा आइशा सिद्दीक़ा रज़िअल्लाहु तआला अन्हा की इज़्ज़त व हुर्मत के ख़िलाफ़ एक महाज़े जंग क़ायम कर रखा है उनसे तुम याराना और सांठ–गांठ चाहते हो। उसे तुम्हारा मुरदा ज़मीर गवारा कर सकता है! जिसकी रगों का ख़ून अभी पानी नहीं हुआ वो हमेशा इस तहरीक के ख़िलाफ़ नफ़रीन व मलामत करता रहेगा।

दोस्तो! ये तस्वीर का एक रुख़ है। यानी जब आक़ाए दो आलम स॰ के मुतअल्लिक़ ख़्वाब देखेंगे तो सरकार को उर्दू सिखाएंगे या बावर्ची बनाएंगे। मआज़ल्लाह! लेकिन जब अपने आक़ाओं के मुतअल्लिक़ ख़्वाब

देखेंगे तो उसका अंदाज़ ही जुदागना होगा। मालूम ऐसा होता है कि एक समझी–बूझी स्कीम के तहत ख़्वाब भी देखा जाता है। अब उस सही ताबीर ये होगी ये ख़्वाब देखा नहीं जाता है। 'आमद व आवुर्द का फ़र्क़ है'। चुनांचे अब तस्वीर का दूसरा रुख़ मुलाहज़ा फ़रमाइए।

तस्वीर का दूसरा रुख़

हवाला...........

''एक मर्तबा मुझको सोते में आवाज़ आई कि मौलाना हुसैन अहमद इस दौर के अब्दुल्लाह बिन मुबारक हैं।''

(शैखुल-इस्लाम, पेज १४८)

एक दूसरा हवाला मुलाहज़ा फ़रमाइए –

हवाला..........

''एक बुज़ुर्ग ने मुझसे ख़्वाब में फ़रमाया कि हुसैन अहमद साहब हज़रत गंगोही की निचोड़ हैं। उनके हर अमल में मुसलमानों की बेहतरी है।'' (शैखुल इस्लाम, पेज १४८)

❖ ❖ ❖

नवां बाब

मुतफ़र्रिक़ात

यानी

देवबंदियत अपने आईने में

उसका पता न पूछो बस आगे बढ़े चलो
होगा किसी गली में तो फ़ित्ना उठा हुआ

किसी साहब ने मौलाना गंगोही से दर्याफ़्त किया अगर ख़त में मक्तूब इलैह को क़िब्ला व काबा लिखा जाए तो ये दुरुस्त है या नहीं? मौलाना गंगोही ने जो जवाब दिया– अब इस आईने में मौलाना थानवी की सूरत मुलाहज़ा फ़रमाइए–

हवाला मुलाहज़ा फ़रमाइए –

मौलाना गंगोही : सवाल–ख़त में अल्क़ाब क़िब्ला व काबा लिखना दुरुस्त है या नहीं?"

जवाब : "क़िब्ला व काबा किसी को लिखना दुरुस्त नहीं।"

('**फ़तावा रशीदिया**' कामिल, पेज ४६८)

दूसरा जवाब : "ऐसे कलिमाते मदह के किसी की निस्बत कहने और लिखने मक्रूह तहरीमी हैं।"

('**फ़तावा रशीदिया**' मुकम्मल, पेज ४८८)

मौलाना गंगोही का फ़तावा नाज़िरीन ने मुलाहज़ा फ़रमाया। अब मौलाना का ख़त मौलाना गंगोही के नाम मुलाहज़ा फ़रमाइए –

हवाला............

मौलाना थानवी : "और मंशा इस तवस्सेअ् का हज़रत क़िब्ला व काबा का क़ौल व फ़ेल है।" ('**तज़्किरतुर्रशीद**' हिस्सा अव्वल,पेज ११६)

दूसरा हवाला..........

हज़रत क़िब्ला व काबा के साथ शरअन किया तअल्लुक़ रखना चाहिए।" ('**तज़्किरतुर्रशीद**' जिल्द अव्वल, पेज ११८)

ग़ालिबन मौलाना गंगोही खुद अपना फ़त्वा भूल गए थे। चुनांचे क़िब्ला

व काबा लिखने पर मौलाना थानवी की ज़ज्र व तौबीख़ और डांट व फटकार नहीं की गई। या जनाब ने इस फ़त्वे से खुद को या थानवी साहब को मुस्तसना कर लिया है। यानी किसी और को नहीं मगर मौलाना गंगोही को लिखा जा सकता है। या कोई और नहीं लिख सकता सिर्फ़ मौलाना थानवी लिख सकते हैं। कुछ भी हो इसका इक़रार करना पड़ेगा कि बोलते हो मगर समझते नहीं।

मौलाना गंगोही देवबंदी गुरूप के '**कुत्बुल-आलम**' और 'इमामे रब्बानी' हैं जो खुद अपने मुतअल्लिक़ कहते थे कि नजात व हिदायत मौक़ूफ़ है मेरी इत्तिबा पर। मौलाना थानवी साहब फ़िर्का ज़ाग़िया के नज़दीक '**हकीमुल-उम्मत**' और '**जामेउल-मुजद्दिदीन**' हैं। देवबंदियों के नज़दीक जिनके पांव को धोकर पी लेना नजाते उख़्रवी का सबब है।

ग़ौर फ़रमाइए जिस जमाअत के '**कुत्बुल-आलम**' और '**हकीमुल-उम्मत**' के क़ौल व फ़ेल के तज़ाद का ये आलम है उस जमाअत के ''छुट भैय्यों'' का किया हाल होगा? –

क़्यास कुन जगुलिस्तान मन बहार मरा

वर्क़ उलटिए और इस हैरतकदा में क़दम रखिए जहां ईमान व अक़ीदे का खूने नाहक़ करने वाले इंसाफ़ का तराजू लिए बैठे हैं।

हवाला मुलाहज़ा फ़रमाइए –

थानवी साहब : अगर एक वक़्त में कई जगह महफ़िल ''महफ़िले मौलूद'' मुंअक़िद हो तो आया सब जगह तशरीफ़ ले जावेंगे या कहीं? ये तो तर्जीह बिला मरज्जह है कि कहीं जावें कहीं न जावें। और अगर सब जगह जावें तो वुजूद आपका वाहिद है, हज़ार जगह किस तौर जा सकते हैं?''

('फ़तावा इम्दादिया' जिल्द चहारुम पेज ५८)

ये है थाना भवन के हकीमुल–उम्मत का इरशाद कि सरवरे क़ौनेन स० एक ही वक्त में मुतअद्दिद मक़ामात पर कैसे पहुंच सकते हैं! न पूछिए जेहन व फ़िक्र की फ़ित्नागरी का आलम। माने तो देवता और न माने तो पत्थर!

आक़ा–ए–काइनात की बारगाह में जिन्हें आपने शोरीदासर देखा अब उन्हीं को अपने आक़ाओं के हुजूर सज्दारेज़ देखिए।

हवाला........

मौलवी महमूद हसन नगीनवी : ''मौलवी महमूद हसन नगीनवी

फ़रमाते हैं कि मेरी खुशदामन साहिबा जो अपने वालिद के हमराह मक्का मुअज़्ज़मा में बारह साल तक मुक़ीम रहीं! निहायत पारसा और आबिदा, ज़ाहिदा थीं। सैकड़ों अहादीस भी उनको हिफ़्ज़ थीं। उन्होंने मुझसे फ़रमाया कि बेटा! हज़रत ''यानी मौलाना रशीद अहमद गंगोही'' के बहुत शागिर्द व मुरीद हैं मगर किसी ने हज़रत ''गंगोही'' को नहीं पहचाना। जिन अय्याम में मेरा क़्याम मक्का मुअज़्मा में था रोज़ाना मैंने सुबह की नमाज़ हज़रत ''गंगोही'' को हरम शरीफ़ में पढ़ते देखा है और लोगों से सुना भी है कि ये हज़रत मौलाना रशीद अहमद गंगोही हैं, गंगोह से तशरीफ़ लाया करते हैं।'' (तज़्किरतुर्रशीद जिल्द अव्वल, पेज २१२)

दर्याफ़्त कीजिए क़ारी तय्यब साहब से कि उन्हें थानवी साहब की राय से इत्तिफ़ाक़ है या **तज़्किरतुर्रशीद** के मंदर्ज़ा बाला वाक़िया से जो बजाए खुद देवबंदी मज़हब के रुख़सार पर एक ग़ैबी तमांचा और उनकी बरहना पुश्त पर ताज़ियाना–ए–इबरत है। आप ही इंसाफ़ से कहिए मीलाद शरीफ़ पर पहरा बिठाने के लिए जो हथियार इस्तेमाल किया गया था । क्या इसी ने उनके पावं पर कुल्हाड़ी का काम नही किया? मगर ये एहसास तो जब होता कि समझ के बोलते मगर यहां का हाल तो ये है कि बोलते हैं मगर समझते नहीं!

अभी कुछ दूर और चलिए ये दास्तान ख़त्म नहीं हुई।

अभी और जिंदगी दे कि है दास्तां अधूरी
मेरी मौत से न होगी कभी दास्तान पूरी

हवाला मुलाहिज़ा फ़रमाइए –

मौलाना गंगोही : सवाल। ''मौलूद शरीफ़ और उर्स कि जिसमें कोई बात ख़िलाफ़े शरा न हो जैसे कि हज़रत शाह अब्दुल–अज़ीज़ साहब रहमतुल्लाह अलैह किया करते थे, आपके नज़दीक जाइज़ है या नहीं? और शाह साहब वाक़ई मौलूद और उर्स करते थे या नहीं?''

(अज़ सईद अहमद ख़ां मुरादाबादी, **फ़तावा रशीदिया**)

जवाब : **''अक्द मज्लिसे मौलूद ''यानी मज्लिसे मौलूद का करना'' अगरचे उसमें कोई अम्र ग़ैर-मश्रू न हो मगर इहतमाम व तदाई उसमें भी मौजूद है। लिहाज़ा इस ज़माना में दुरुस्त नहीं व अला हज़ा। उर्स का जवाब है बहुत अश्या हैं कि अव्वल मबाह थीं फिर किसी वक़्त में मना हो गई। मज्लिसे उर्स व मौलूद भी ऐसा ही है। फ़क़त**

रशीद अहमद गंगोही।'' (फ़तावा रशीदिया कामिल, पेज १०५)

मालूम हुआ कि अगरचे मीलाद शरीफ़ में कोई बात ख़िलाफ़ शरअ् न हो जब भी वो दुरुस्त[१] नहीं है क्योंकि उसमें एहतमाम और तदाई है जिसका ख़ुलासा ये है कि अगर मीलाद शरीफ़ के लिए कोई एहतमाम न किया जाए और बाक़यदा लोगों को मदऊ न किया जाए बल्कि इत्फ़ाक़िया अगर दस, बीस, सौ–पच्चास आदमी बैठे हों तो बग़ैर किसी एहतमाम के मीलाद शरीफ़ पढ़ लिया जाए। ऐसी सूरत में तो दुरुस्त है। यानी नफ़्से मीलाद शरीफ़ तो दुरुस्त है मगर एहतमाम व तदाई दुरुस्त नहीं है–

ख़ुद आप अपने दाम में सय्याद आ गया

अब इस आईने में जनाब की मकरूह व गंदा सूरत मुलाहज़ा फ़रमाइए।

हवाला.........

मौलवी आशिक़ इलाही मेरठी :''बज़्लिल-मजहूद[२]'' (२) ११/रबी उलअव्वल/३५ हिजरी में शुरू हुई २१/शाबान ४५हिजरी पूरे दस बरस पांच माह दिन में ये शरह बड़ी तक्तीअ् के तक़रीबन दो हज़ार सफ़हात में पांच जिल्द हो कर ख़त्म हुई। और उसके ख़त्म पर हज़रत ''मौलाना ख़लील अहमद अंबेठवी'' को इस दर्जा मुसर्रत व ख़ुशी हुई जिसका मुक़ाबला दुनिया की कोई बड़ी–से–बड़ी ख़ुशी नहीं कर सकती। हफ़्त अक़लीम की सल्तनत का मिलना इंतेहाई ख़ुशी का महावरा इस्तेमाल किया जाता है मगर अह्लुल्लाह को दुन्यवी लज़्जतों के हुसूल में तो ख़ुशी ही मफ़कूद हो जाती है। इसलिए मेरे पास वो अल्फ़ाज नहीं हैं जिनसे हज़रत की इस ख़ुशी का अंदाज़ा नाज़िरीन को करा सकूँ। आप ''मौलाना ख़लील अहमद अंबेठवी'' ने ख़त्म पर २३/शाबान यौमे जुमा को उलमा–ए–मदीना और अहबाब हाज़िरीन की ज़्याफ़त का सामान किया और ख़ास अपने पैसे से और बड़े एहतमाम के साथ अरबी तर्ज़ की ज़्याफ़त का सामान किया कि आपका रोवां–रोवां शुक्रे इलाही में चूर और इन्आमे बारी पर इतना फ़रहां व मसरूर था कि उसका अंदाज़ा वहीं के रहने वाले हाज़िरबाश हज़रात ने किया होगा। दावत के आपने ख़ुतूत तबा कराए और एक बड़े पैमाना पर जीरान[३] रसूल की

(१) देवबन्दी धर्म में (२) अबू–दाऊद शरीफ़ की शरह का नाम है।
(३) रसूले करीम के पड़ोसी।

मेज़बानी का शौक़ पूरा किया। इस खुशी का अंदाज़ा कीजिए कि उन दावती खुतूत में हज़रत ने अपने हिन्दी ख़ुद्दाम को भी फ़रामोश न फ़रमाया।'' ('**तज़्किरतुल-ख़लील**,' पेज २७६–२७७)

एहतमाम व तदाई पर ये एक ऐसी मुंह बोलती इबारत है जो तशरीह तलब नहीं है। नफ़्से मीलाद शरीफ़ दुरुस्त होने के बावजूद सिर्फ़ इसलिए नादुरुस्त हो गया चूंकि इसमें एहतमाम व तदाई है।

अब मुंदर्जा बाला इबारत का तज्ज़िया कीजिए कि मौलाना ख़लील अहमद मुहद्दिस अंबेठवी ने अबू–दाऊद शरीफ़ की शरह जब मुकम्मल कर ली तो इस खुशी में अहले मदीना की दावत की। मगर मामला ऐसा नहीं था कि बग़ैर सोचे समझे यों ही एक रोज़ खाना तैयार कराया और चलते फिरते हर राहगीर का बाज़ू थाम कर उससे अर्ज़ किया हो खाना तैयार है, तशरीफ़ ले चलें। जी नहीं! बल्कि दावत के लिए शाबान की २३/तारीख़ मुकर्रर हुई और जुमा का दिन मुतऐय्यन हुआ। ज़बानी दावत नहीं दी गई बल्कि बड़े एहतमाम से दावती कार्ड छपे और मत्बूआ कार्ड को सड़क के चौराहे पर नहीं रखा गया कि जो उसे उठा ले वही दावत में शरीक हो जाए बल्कि इसकी फ़ेहरिस्त मुरत्तब हुई कि किन हज़रात को मदऊ किया जाए और सिर्फ़ अहले–मदीना ही को नहीं मुंतख़ब किया गया बल्कि हिन्दी गुलामों को भी बज़रीआ डाक दावत–नामा भेजा गया। अक्ल हैरान है और इंसानियत कलेजा पीट रहा है कि ख़ुदाया! तेरी बिछाई हुई ज़मीन पर ये कैसी सरकश क़ौम आबाद है कि अपनी खुशी के इज़्हार में वो दिन और तारीख़ मुअय्यन करती है। एहतमाम व तदाई में एतदाल नहीं बल्कि ग़ुल से काम लेती है और उसकी नज़रों में ये सब कुछ दुरुस्त! लेकिन जिस तारीख़ व दिन में तेरे ही नहीं बल्कि काइनात के भी महबूब की विलादत बा–सआदत हुई हो अगर उनका ज़िक्र सुनाने के लिए एहतमाम व तदाई किया जाए तो सब मम्नू, नाजायज़ व हराम और शिर्क व बिदअत है। उसे रसूले दुश्मनी न कहा जाए तो और क्या कहा जाए? इस दुशमनी का नतीजा है कि इस हद तक यतीमुल–अक़्ल बना दिए गए कि बोलते हैं मगर समझते नहीं!

'**तज़्किरतुल ख़लील**' का मुंदर्जा बाला हवाला देवबंदियों के हक़ में ज़हरे हलाहल से कम नहीं। उसमें तारीख़ का तऐय्युन, दिन का तकर्रुर, एहतमाम और तदाई–हर एक का सुबूत है। फ़िर्क़ा ज़ाग़िया की गंगोही

शरीअत का एक और हवाला मुलाहज़ा फ़रमाया जाए जिससे उनकी मंनघड़त बिदअत का चेहरा बेनक़ाब हो जाएगा।

हवाला........

मौलाना गंगोही : सवाल : किसी मुसीबत के वक्त बुख़ारी शरीफ़ के ख़त्म कराना कुरूने सलासा से साबित है या नहीं और बिदअत है या नहीं?

जवाब : कुरूने सलासा में बुख़ारी तालीफ़ नहीं हुई थी। मगर उसका ख़त्म दुरुस्त है कि ज़िक्र ख़ैर के बाद दुआ कुबूल होती है। उसकी असल शरअ् से साबित है, बिदअत नहीं। फ़क़त रशीद अहमद गंगोही।

('**फ़तावा रशीदिया**' कामिल, पेज १०२)

मुझे दर्याफ़्त करने दीजिए कि मीलाद शरीफ़ ज़िक्र ख़ैर है या नहीं। अगर है और यक़ीनन है तो जिस दलील की बुनयाद पर ख़त्म बुख़ारी शरीफ़ दुरुस्त है तो इसी दलील के तेहत मीलाद शरीफ़ को दुरुस्त क्यों नहीं क़रार दिया जाता? आख़िरश मीलाद शरीफ़ से इतनी चिढ़ और ज़िद क्यों है? ये तो आपके बाएं हाथ का खेल है जो किसी ज़माने में ना–दुरुस्त और मम्नू हो वो आपके दौर में दुरुस्त और जायज़ हो जाए और जायज़ वग़ैरा मम्नू आपके अहद में मम्नू हो जाए।

बात आ ही गई है तो इसका भी हवाला लीजिए –

हवाला.........

मौलाना गंगोही : सवाल : "नालेन चोबी" लकड़ी की खड़ांव" को मौलवी अब्दुलहय्य साहब लखनवी ने बिदअत लिखा है।

"**इत्तिख़ाजुन-नाले मिनल-ख़शबे बिदअते कमा फ़िल-कुन्नियः वल हमादीयाः**। इसका वही मतलब है जो हुज़ूर ने फ़रमाया है या ये कि कुतुब ग़ैर–मोतबरा से है, या इस इबारत की और कोई तावील हो सकती है,"**बैय्यनू व तुअज्जिरू**।

जवाब : किसी वक्त में ना–जायज़ थी, अब दुरुस्त हो गई कि आम इस्तेमाल इसका हो गया।

फ़क़त। वल्लाह तआला आलम। बंदा। रशीद गंगोही।"

('**फ़तावा रशीदिया**' कामिल, पेज ४७१–४७२)

साइल ने मौलाना गंगोही से सवाल किया कि मौलाना अब्दुलहय्य साहब लखनवी ने लकड़ी की खड़ांव पहनने को बिदअत लिखा है। लिहाज़ा हजरत वाला से दर्याफ़्त करना है कि इस बारे में इमाम रब्बानी की राय

क्या है? बग़ैर किसी तअम्मुल के जनाब ने फ़त्वा दे दिया कि किसी वक़्त में नाजाइज़ थी, अब दुरुस्त हो गई। यही मैंने अर्ज़ किया था कि दुरुस्त को दुरुस्त और दुरुस्त को ना–दुरुस्त करना ये तो आंजनाब का रोज़मर्रा था। अब तमाम सुन्नियों को इसका इंतज़ार है कि देवबंदी शरीअत में जो मीलाद ना–दुरुस्त है उसके दुरुस्त होने का वक़्त कब आएगा? उसे भी ग़नीमत जानिये कि गंगोही साहब ने उम्र तबई ही पाई। अगर कहीं कुछ ज़्यादा उम्र पाते तो फ़िक्ह: हनफ़ी को बिल्कुल ही मलियामेट कर गए होते। कौआ खाना सवाब, गाय की ओझड़ी दुरुस्त, बकरे का कपूरा हलाल– ये नयी शरीअत नहीं तो और क्या है? अब इसी मौज़ू से मुतअल्लिक़ एक हवाला मुलाहज़ा फ़रमाइए –

हवाला –

मौलाना गंगोही : "सवाल : क्या पहनना खाड़ावं चोबी का बिदअत है?"

जवाब : "खड़ांव चोबी का पहनना बिदअत नहीं बल्कि ब–सबब नफ़ा के और उसकी अस्ल होने के कि जूता और मोज़ा भी दुरुस्त है। अल्बत्ता ब सबब मुशाबहत जोगिया के किसी वक़्त मना लिखा था मगर अब ये काफ़िर व मुस्लिम में शाय हो गई है। अब मुशाबहत उसमें मम्नू नहीं। फ़क़त वल्लाह तआला आलम।

('**फ़तावा रशीदिया**' मुकम्मल, पेज ४७२)

कुरबान जाइए! चूंकि लकड़ी की खड़ांव पहनने में नफ़ा है इसलिए अब इसका पहनना बिदअत नहीं। तो मुझे दर्याफ़्त करने दीजिए कि मीलाद शरीफ़ जैसी ख़ैर व बरकत भरी महफ़िल में मुसलमानों के लिए बेशुमार फ़वाइद हैं। मीलाद शरीफ़ का मगर इसी बहाने मुसलमानों को तहारत, नमाज़, रोज़ा, हज्ज व ज़कात वग़ैरा के अहकाम व मसाइल मालूम हो जाते हैं। आख़िरश वो कौन–से असरार व रुमूज़ हैं कि इतने मुनाफ़े और फ़वाइद के बावजूद आपकी शरीअत का ना–दुरुस्त मीलाद दुरुस्त क्यों नहीं हो रहा है? बस इतनी बात है कि खुद आपके दुरुस्त होने की देर है जिस दिन आप सहीहुल–अक़ीदा हो जाएं मीलाद की सेहत खुद समझ में आ जाएगी।

❖❖❖

दसवां बाब

खुलासा-ए-गुफ़्तगू

भरोसा मशअलों पर ता कुजा ए कारवां वालो
खुद अपनी रौशनी में क्यों न पहचानो मक़ाम अपना

कुछ अपनी बातें

तुम हो मसीहा तुम ही समझ लो
मैं क्या जानूं दर्द किधर है

'देवबंदी बोलते हैं मगर समझते नहीं! नाम की किताब अगर आपने हस्बे तर्तीब पढ़ने की ज़हमत उठाई है तो हवालजात की रौशनी में ये फ़ैसला बहुत ही आसान साबित हुआ होगा कि मज़हबे अह्लेसुन्नत के मुक़ाबिल अस्रे हाज़िर में देवबंदी-इज़्म किसी आतिशी अस्लहाख़ाने से कम नहीं। वो तो ये कहिये कि मज़हब अह्लेसुन्नत व जमाअत अपनी हक़्क़ानियत व सदाक़त की बुन्याद पर ज़िंदा है और इंशाअल्लाह तआला उस वक़्त तक कायम व दायम रहना है जो मिनजानिब अल्लाह उसके लिए मुक़द्दर हो चुका है। मगर इस सिलसिले में इंफिरादी व इज्तमाई तौर पर हमें सोचना है कि खुद हमने अपनी जिम्मादारीयों को कहां तक महसूस किया। अगर महसूस किया तो इससे ओहदा बरआ होने की हमने कहां तक जद्द-व-जहद की है। हमें बहुत दूर तक इसका एहसास है कि हमारी जमाअत के दर्दमंद, ग़य्यूर व हस्सास और फ़अ्आल व मुतहर्रिक अफ़राद ने अपने-अपने हलक़ा-ए-अस्र में अपने को किसी इशरतकदे में ख़ामूश नहीं रखा बल्कि वहां की संगलाख़ कंकरीली और पथरीली ज़मीनों को खूब-खूब रौंदा और पामाल किया। मौक़ा इसका नहीं कि उनके नाम शुमार किये जाएं। जमाअत के ऐसे मुम्ताज़ व मुताआरिफ़ हज़रात ज़ेहनों में महफ़ूज़ हैं। आज उन्हीं चंद को ऐवान-ए-सुन्नियत का सुतून समझा जाता है। मगर सवाल हमारी अज्तमाई जिंदगी का है। अपने वक़्त का ये एक ऐसा उभरा हुआ

सवाल है जो लाखहा–लाख जेहनों में कांटे की तरह चुभ रहा है। ज़रूरत है कि इस इजेंडे पर सिर जोड़ का बैठें और वो उम्मते मुस्लिमा जो अपने नाखुदाओं से एक आस लगाए बैठी है उसके ज़ख्मे जिगर का कोई मरहम तैयार करें।

इसके ये माना हैं कि हममें जमाअती ज़िंदगी का शऊर नहीं। सुन्नी दुनिया फ़हम व फ़िक्र, अक्ल व दानिश, दूर–अंदेशी, इसाबते राय जैसी गूनागूँ और नौ–ब–नौ सलाहिय्यतों के मुंतशिर अफ़राद के एक इंतिहाई शादाब व पुरकशिश बाग़ व बाग़ीचे का दूसरा नाम है जिसकी छाओं में न जाने कितने थके मांदे मीठी नींद सो गए और सो रहे हैं। मगर ये कितनी अलमनाक कहानी है कि हमारा थका–मांदा कारवां खुद किसकी छावं में ठंडी सांस ले? इस हैबतनाक तसव्वर से हमरा कलेजा दहल जाता है। कहीं आने वाली नस्ल हमारे मुतअल्लिक़ ये गुमान न करे कि हमारी मिसाल उस रौशन चराग़ की–सी है जिसकी रौशनी में न जाने कितने गुमकरदा राह अपनी मंज़िलों से हमदोश हुए। मगर खुद चराग़ तले अंधेरा ही रह गया। जहां दस बरतन होते हैं, वहां आवाज़ का पैदा होना एक कहावत है। अगर सादालौह सुन्नी मुसलमानों को अग़्यार के चंगुल से महफ़ूज़ रखना है तो माज़ी की तलख़ियों का तज़किरा किए बग़ैर कभी–भी और कहीं भी बैठ जाइए और वक़्त की सही नब्बाज़ी करके अगर मुतअद्दिद जमाअतों को तहलील कर सकते तो उनकी सलाहियतों और दायरा–ए–अमल के लिहाज़ से तक़सीम कार के तेहत हर एक को जुदागाना काम सपुर्द कर दिये जाएं। हर चंद कि हालात के मजबूर करने पर तक़रीबन पांच छः बरस पेशतर मैंने "ऑल इंडिया तबलीग़ी जमाअत" की दाग़–बेल डाली। इस वक्फ़ा में कभी तदरीजन इसका थोड़ा बहुत काम होता रहा और कभी मुसलसल जुमूद व तअत्तुल तारी रहा। लेकिन तक़रीबन एक साल से उसका महदूद दायरा–ए–अमल वसी से वसीतर होता जा रहा है। मुल्क के मुख़्तलिफ़ सूबों में अपने तआरुफ़ी दौर से गुज़र कर मैदाने अमल में उतर चुकी है। इंतहाई मुफ़ीद व खुश्गवार नताइज सामने आ रहे हैं। जहां कहीं भी इस तहरीक ने आग़ाज़कार से जिद्द–व–जुहद का तसलसुल बाक़ी रखा वहां ख़ातिरख़्वाह नताइज रोनुमा हो रहे हैं और दूसरों के दाख़िले में

सीसा पिघलाई दीवार साबित हो रही है। ये सब कुछ सही इसका भी इम्कान है कि किसी भी वक़्त ये अवामी तहरीक एक आलमगीर तहरीक बन जाए।

मगर! मैं इस खुशफ़हमी में मुब्तला नहीं हूँ कि सुन्नी तबलीग़ी जमाअत ने अज़ अव्वल ता आख़िर सुन्नी मसाइल को अपने दामन में समेट लिया है। मैं बहुत अच्छी तरह जानता हूँ कि अपने दस्तूर "तरीक़ा–ए–कार" अग़राज़ व मक़ासिद और मुहदूद असबाब व वसाइल के पेशे नज़र इस एक बहुत ही मख़्सूस नुक़्ता–ए–फ़िक्र है और इस जमाअत ने उसी पर क़ाबू पा लिया तो हम अपने रब का सज्दा–ए–शुक्र अदा करेंगे। खुद मुझ जैसे नाकारा को अपनी टूटी–फूटी सलाहियतों का इल्म है कि मैं क्या कर सकता हूँ। न तो मुझ पर हमादानी का भूत मुसल्लत है और न ही पिन्दार का जुनून है। जिसे जहले मुरक्कब से ताबीर किया जाए। मुनाज़रा मैं देवबंदियों से करता हूँ मगर अपनों के हुज़ूर बहस व मुबाहसा से पहले ही हथियार डाल देने की कोशिश करता हूँ।

तबलीग़ी जमाअत को मैंने वक़्त का एक अज़ीम फ़ित्ना समझा। मुद्दतों इंतज़ार करता रहा। शायद किसी गोशे से कोई आवाज़ आये और हम भी उसी कारवान के शरीके सफ़र हो जाएं मगर जब इंतज़ार की घड़ियां नाक़ाबिले बरदाश्त हो गई तो खुद मुझे पहल करनी पड़ी। हांलांकि न मैं उसका अहल था और न हूँ। मगर यहां मरता क्या न करता वाली मिसाल है। मैंने अपने अवाम और दोस्तों को पुकारा कि एक ऐसे मुसाफ़िर का साथ दो जो मंज़िल की तरफ़ अकेला नहीं जाना चाहता चूंकि वो उसकी तंहा मंज़िल नहीं है बल्कि तुम्हारी भी है। मुझे ऐसा महसूस हुआ कि बग़ैर किसी हुज्जत व तकरार के लोगों ने इस हकीक़त का एतराफ़ कर लिया और हर सम्त से आने वालों का तांता बंध गया। मैं आपको ज़हमते सफ़र देता हूँ कि कभी आप हज़रात सुन्नी तबलीग़ी जमाअत के ऑफ़िस में तशरीफ लाएं जो इस हद तक मुख़्तसर है कि उसे परिंदों का "दरबा" या "पिंजरा" कहा जा सकता है। मगर मैं हालात से मायूस नहीं हूँ। किसी भी वक़्त ऑल इंडिया सुन्नी तबलीग़ी जमाअत की ख़ुद अपनी इमारत होगी जिसमें जमाअत के तमाम शोबेजात का क़्याम अमल में लाया जाएगा। मैं यक़ीन की एक ऐसी बुलंद सतह से इस का ऐलान कर रहा हूँ कि अब अगर मैं

उसे तोड़ भी देना चाहूँ तो ऐसे अफ़राद पैदा हो चुके हैं जिन्होंने इसे इस तरह कुबूल कर लिया है कि वो बतैय्यब ख़ातिर पूरी हौसलामंदी से इसका बोझ अपने कांधे पर उठा लेंगे।

इसी तरह हमारे उलमा और अमाइद अह्ले सुन्नत का एक जम्मे ग़फ़ीर है जो अपने आपको सुन्नी तबलीगी जमाअत के लिए वक्फ़ कर चुका है। हालात इंतेहाई उम्मीद अफ़्ज़ा हैं। रब्बे करीम इस्तिक़्लाले दवाम अता फ़रमाए और सुन्नी मुसलमानों के वो अफ़राद जिन्होंने अभी तक इसकी ज़रूरत नहीं महसूस की उन्हें इसके एहसास की तौफ़ीक़ अता फ़रमाए। आमीन।

ग़ालिबन बात अपने मौज़ू से कुछ दूर निकल गई और मैं इसकी माज़रत चाहूँगा कि इस सुन्नी तबलीगी जमाअत मेरे ज़ेहन व फ़िक्र पर मुसल्लत है। बाज़ औक़ात अमदन न सही इज़्तरारन ऐसी बातें नोके क़लम पर आ जाती हैं कुछ इस वक़्त ऐसा ही हो रहा है। मुझे फिर इसी नुक़्ता–ए–आग़ाज़ पर आना है कि हम इस मुल्क में सुन्नी मसाइल को एक ऐसी बेंच पर लाएं जहां दानिश्वरों का इजतमा मुंतशिर, बिखरे और उल्झे हुए मसाइल को समेट कर उसका हल तलाश करे। ये हमारी ज़िंदगी का कितना कमज़ोर पहलू है कि हम अपनों को अपना बना के न रख सकें और अग़्यार हमारी इस ताक़त से अपने को मज़बूत बनाते चले जाएं। आज हमारे मुक़ाबिल अलग–अलग दो ऐसे कैम्प हैं जहां से हमारी मुत्तहदा ताक़त को मुंतशिर और पामाल करने के लिए वार–पर–वार होते रहते हैं। उनमें देवबंद हमारा खुला हुआ दुशमन है। अपने ग़लत परोपैगन्डे से उसने हमारी इज्तमाई कुव्वत को किस हद तक नुक़्सान पहुंचाया है वो आफ़ताब से ज़्यादा रौशन है। अल्बत्ता हमारे और मक्तबा–ए–फ़िक्र देवबंद के दरम्यान एक और दल तैयार हो रहा है। दल–बदली जिसकी सरिशत व फ़ितरत है वो मीलाद व सलाम की हद तक हम से मेल खाता है और कुफ़्रियात दीयाब्ना पर मुत्तला होने के बावजूद उनकी तकफ़ीर से कफ़े लिसान करके उनकी भी हमदर्दियां हासिल करता है। वो बगुमाने ख़्वेश हम–जैसों को लकीर का फ़क़ीर और अपने जैसों को रौशन ख़्याल तसव्वर करता है। उसका कहना ये है कि **'हस्सामुल-हरमैन'** हमारी राह का रोड़ा और फ़िक्री आज़ादी पर एक संगीन पहरा है। हम उन्हें देवबंदियों से भी

ज़्यादा मूज़ी और ख़तरनाक तसव्वर करते हैं।

चूंकि वो खुला दुशमन है और यह मारे आस्तीन हैं। ज़ेरे मुताला किताब में इस मौज़ू पर मुख़्तलिफ़ बेंच से रौशनी डाली गई है ताकि नाज़रीन के मिज़ाज में अक़ीदे का तसल्लुब पैदा हो। यही एक ऐसी स्प्रिट है जो दुशमनाने मुस्तफ़ा और शातिमाने रसूल से इज्तिनाब व एहतराज़ पर उभारती है। मेरी अक़्ल हैरान है। बनामे इस्लाम व मुसलमान आज न जाने कितने फिरक़ और कितनी टोलियाँ हैं जिनकी तादाद हमारे मुक़ाबिल दाल में नमक बराबर भी नहीं ! लेकिन वो अपने मज़हबी उमूर ख़्वाह मुअ्तक़िदात हों या मामूलात व मरासिम–वो किसी में भी हमारी जरूरत महसूस नहीं करते। हमसे अलग–थलग रह कर हर तरह वो अपने जमाअती इम्तियाज़ को बरक़रार रखते हैं। मगर न जाने क्यों हमारी जमाअत के बाज़ अफ़राद इस एहसास कमतरी में मुबतला हैं कि दूसरों को लिए बगैर हमारा काम नहीं चल सकता! मुझे इस मकाम पर तरद्दुद है कि जिस किरदार की मैं निशानदही कर रहा हूँ" एहसास कमतरी" उसकी सही ताबीर है या नहीं?

बहरहाल! देवबंद ने नज़ाई उमूर में अवाम को एक ऐसा ग़लत ज़ेहन दे दिया है कि हमारे और उनके माबैन चंद फ़रोई मसाइल में हल्के–फुल्के इख़्तिलाफ़ात हैं और रोज़–बरोज़ यही मसाइल तक़रीर व तहरीर के मौज़ू बनते जा रहे हैं। ख़ुदा–न–ख़्वासता अगर इस सिलसिला की उम्र ज़्यादा हो गई तो देवबंद के असल जुर्म पर इत्ना दबीज़ परदा पड़ जाएगा कि आने वाली नस्ल उनका असल चेहरा न देख सकेगी। इसलिए वक़्त की यह अहम ज़रूरत है कि मुजरिम का अस्ल जुर्म अवाम की कोर्ट में लाया जाए ताकि तौहीने नुबुव्वत और तंक़ीसे रिसालत से मुतअल्लिक़ जो उनके जराइम हैं इसकी तवील फेहरिस्त आखों से ओझल न हो सके। ज़ेरे नज़र किताब की तरतीब का मक़सद यही है कि हमने अस्ल मुजरिम को कटहरे में खड़ा कर दिया है। अब इसके बाद आपके ईमान व अक़ीदे को ये एक चैलंज है कि ऐसी जरायम–पेशा जमाअत को मज़ीद जुर्म की मोहलत दी जाए या फ़िलवाके क़तअ् तअल्लुक़ की जैसी जिन सज़ाओं की वो जमाअत मुसतहिक़ है उसी पर खुल्लम–खुल्ला दर"आमद किया जाए।

वाजेह रहे ये कोई शख़्सी या इन्फ़िरादी मसअला नहीं है बल्कि पूरी

सुन्नी बिरादरी को इसे जमाअती मसअला समझ कर अपना मरकज़े तव्वजह बनाना चाहिए। इसीलिए मैंने मज़मून की इब्तिदा में अपनी जमाअत को मुख़ातब किया है कि देवबंद के मुकाबले महज़ हमारा इन्फ़िरादी काम उसका असल जवाब नहीं है बल्कि जमाअती सतह पर ठोस और मज़बूत क़दम उठाया जाए ताकि वक़्त के एक अज़ीम फ़ित्ने को हम आसानी से पामाल कर सकें।

मेरे अपने ख़्याल में ऑल इन्डिया सुन्नी जमीअतुल–उलमा ही अस्रे हाज़िर में कुछ फ़अ्आल व मुतहररिक जमाअत है। अगर हमारे अकाबिर इसकी ज़मामे क़्यादत संभाल लें तो असाग़िर को उनके गिर्द सिमट आने में देर न लगेगी। शायद कि हम इसी झंडे तले अपने अस्री मसाइल का ठोस और पायदार हल तलाश कर सकें। ये एक राय है, कोई हुक्म व फ़ैसला नहीं। वक़्त की ये एक अहम ज़िम्मादारी है। काश! हम अपनी मुंतशिर तवानाईयों को एक मरकज़ पर समेट सकते।

क्या हुई तेरी निगाह मुहरे साज़
क्यों उफ़क़ से मांगता है तू सहर

❖❖❖

ग्यारहवाँ बाब

चंद ऐसे शवाहिद व नज़ाइर जिनके लिए
रोशनाई नहीं खूने जिगर चाहिए

देवबंदियत अपने असल रूप में

ततिम्मा

ऐ सनाख़्वाने बहाराँ तुझे मालूम भी है
चाके दिल, चाके जिगर, चाके क़बा हैं कितने

❖ ❖ ❖

ज़बाँ को हुक्म ही कहां कि दास्ताने ग़म कहें
अदा-अदा से तुम कहो, नज़रे-नज़र से हम कहें

जेरे मुताला किताब हस्बे तरतीब अपने दसवीं बाब पर ख़त्म हो चुकी थी। अब क्रक्शन और तस्हीह के बाद उसे प्रेस भेजना था। राजस्थान के तवील प्रोग्राम से मैं २० नवम्बर को इलाहाबाद पहुंचा। ये सफ़र मेरी सेहत के लिहाज़ से बड़ा ही सब्र आजमा साबित हुआ। लेकिन रूहानी आस्ताना जात की हाज़री हर दर्द का दरमां बनती गई और उसी सहारे तमाम प्रोग्राम मरहबा से अलविदा तक अन्जाम पज़ीर होते गए। हक़तल्फ़ी व नाहक़ शनासी होगी अगर इस मौक़ा पर अपने उन अहबाब को फ़रामोश कर दिया गया जिन्होंने एक बीमार की अयादत और किसी ज़ख़्मे जिगर पर मरहम नहीं को अपनी सआदत समझा!

मेरे भाई मोहतरम जनाब हाजी मुहम्मद अली साहब जो इन्तिहाई मुनकसिर व मुतवाज़े और इल्म–दोस्त आदमी हैं उन्हीं का कशाना मेरी क़यामगाह था और हक़्क़े मेज़बानी अज़ीज़म फ़ारान के सुपुर्द थी। हाजी साहब के दो मुलाज़िम अज़ीज़ी नमन और मुख़्तार मुसलसल मेरी ख़िदमत पर मामूर रहे। मैं हाजी मुहम्मद अली साहब की इस अदाए मुहब्बत को कभी भूल नहीं सकता। मुकर्रमी जिन्नाह मुजाहिदे जलील मौलाना अमानुल्लाह ख़ान साहब, जुम्ला अइम्मा–ए–मसाजिद, मौलाना क़ारी मुहम्मद यहया साहब, फ़ारान साहब–ये सभी हज़रात इस तरह आते–जाते रहे कि मुझे

कभी तन्हा नहीं छोड़ा। इसी तरह बिरादरम अब्दुल–मजीद ख़ान साहब व अज़ीज़म गुलाम मुहम्मद साहब व अब्दुल–ग़फ़्फ़ार साहब, नागौर शरीफ़ व मोहतरम मुख़्लिस जनाब हाजी मुहम्मद सईद साहब, मौलाना ज़ुहूर अहमद साहब, मौलाना मुसद्दक हुसैन साहब, ज़हूर भाई, मुहम्मद हसन साहब चौधरी, मौलाना अन्सार अहमद साहब, अहमद साहब अब्दुर्रहमान साहब, हाजी मुहम्मद शफ़ी साहब, हाजी शाह मुहम्मद साहब, हाजी नसीरुद्दीन, मौलाना ग़ुलाम अहमद साहब, मौलाना ग़ुलाम मुहीउद्दीन साहब हुनर, हाजी अमजद अली साहब, यूसुफ़ सेठ, मौलाना मुराद अली साहब, आबरूए–सुन्नियत मौलाना अशफ़ाक़ हुसैन साहब नईमी, मुफ़्ती–ए–राजस्थान मौलाना अब्दुल कुद्दूस साहब, मुकर्रमी भय्या जी और फ़ारूक़ पहलवान[१]–ये वो हज़रात हैं जिन्होंने अपने ख़ुलूस व मुहब्बत के गहरे नुक़ूश छोड़े हैं। रब्बे करीम उन तमाम ही हजरात को आसेबे रोज़गार से महफ़ूज़ रखे। आमीन।

राजस्थान के सफ़र की सबसे बड़ी सआदत यह रही कि सुलतानुलहिन्द ख़्वाजा ग़रीब नवाज़ रज़ि॰ की बारगाह की हाजिरी नसीब हुई। ख़ाटो शरीफ़, ये एक तारीख़ी मक़ाम है जिसे शैख़ अली अलइत्लाक़ हज़रत शैख़ अब्दुल–हक़ मुहद्दिस देहलवी रजि॰ ने "मदीनतुल–औलिया" तहरीर फ़रमाया है। वहां के आस्तानाजात पर हाज़िर हुआ। रोहल शरीफ़ जहां सरवरे कौनेन रूही फ़िदाह स॰ का जुब्बा मुबरका है, वहां हाज़िर होकर ज़्यारत से मुशर्रफ़ हुआ। इमामुत्तारिकीन सुलतानुल–आरफ़ीन हज़रत सय्यदी सूफ़ी हमीदुद्दीन नागौरी रजि॰ के मज़ार मुबारक पर हाज़िरी दी। ये देखते हुए सूबा राजस्थान की फ़िरोज़बख़्ती पर रश्क होता है कि उसने कैसे–कैसे आफ़ताब व माहताब अपने कलेजे से लगा रखे हैं। मैं तो उन्हें हसीन तसव्वरात से जी बहलाता हूँ।

तसव्वर से किसी के जगमगाती है सह्र मेरी
किसी की याद से रौशन चराग़ शाम करता हूँ

नाज़िरीन से माज़रत के साथ फिर वहीं पहुंचने की दरख़्वास्त करता हूँ जहां से सफ़र का आग़ाज़ हुआ था। चूंकि एक ताज़ा सफ़र था इसलिए तजकिरा–ए–अहबाब नोके क़लम पर आ गया वरना एक किताब उन तज़्किरों की मुतहम्मिल नहीं होती।

(१) राजिस्थान के सफर में काशाना–ए–फारूक़ ही मेरी मुस्तक़िल आराम गाह है यह फलते और फूलते रहें।

यानी

अब इस किताब को प्रेस जाना चाहिए था। लेकिन नागपुर से मौलाना मुफ़्ती गुलाम मुहम्मद ख़ां साहब का तार आया कि मुनाज़रा है। नागपुर पहुँचो। मगर तार में किसी तारीख़ का ज़िक्र नहीं था। इसलिए उसूलन मैं उनके ख़त का मुंतज़िर हो गया। अचानक १२ जिलहिज्जः ६७हिजरी २४ नवम्बर ७७ ई॰ को ख़तीबे हिन्द मौलाना मुजीब अशरफ़ साहब व भाई सय्यद शम्सुद्दीन साहब, मौलाना गुलाम ख़ां साहब का पैग़ाम लेकर ग़रीबख़ाने पर तशरीफ़ लाए। जिस पैग़ाम का ख़ुलासा ये है कि मौलाना इरशाद अहमद सफ़ीर दारूल–उलूम, देवबंद, राग़िब भोपाली और मौलवी नूर मुहम्मद टांडवी ने नागपुर की मज़हबी फ़ज़ा को मुकद्दर कर दिया है। सय्यदना इमाम अहमद रज़ा फ़ाज़िले बरैलवी रजि॰ पर सब्ब व शतम, दुशनाम तराज़ी और ग़ाली ग़लैज़ की वो बौछार की गई है जिससे सुन्नियों का कलेजा छलनी हो गया है। नीज़ मसलके रिज़वीयत पर ऐसे रकीक व नारवा हमले किये गए हैं जिससे आदमिय्यत और इंसानी शराफ़त शर्मिन्दा है। ऐसा मालूम होता था कि देवबंदियों के स्टेज पर सांडे का तेल फ़रोख़्त किया जा रहा है और फुटपाथ पर बैठने वाले हकीमों की टीम जड़ी–बूटियों का नीलाम कर रही है या सब्ज़ी मार्केट के सड़े–गले माल को फ़रोख़्त करने वाले व्यापारी "हर माल मिलेगा दो आना" हर माल मिलेगा दो आना" का शोर मचा रहे हैं। देवबंद के गलीहर और मुंहफट मौलवियों के सामने तहज़ीब व शराफत सिर झुकाए खड़ी थी। नाम निहाद मज़हबी स्टेज पर इंसानियत और आदमिय्यत का क़त्ले आम होता रहा। सुन्नियों ने इंतिहाई सब्र व तहम्मुल से काम लिया। अलबत्ता जब देवबंदी स्टेज से चैलंजे मुनाज़रा दिया गया तो नागपुर के खुशअक़ीदा मुसलमानों ने 'चश्मे रौशन दिले माशाद' कह कर उसे कुबूल किया।

जब इस सिलसिला में उनका तआक्कुब किया गया तो मौलवी इरशाद अहमद ने भिवंडी के मुनाज़रा का हवाला देते हुए ये कहा कि हम बग़ैर किसी सालिस व हकम के मुनाज़रा को तैयार नहीं। "**मुनाज़रा रशीदिया**" फ़न्ने मुनाज़रा की एक उसूली किताब है जिसे फ़रीक़ैन तसलीम करते हैं।

चुनांचे उसी की रौशनी में जब देवबंदी मौलवियों से मुतालबा किया गया कि क्या ये शराइत मुनाज़रा में हकम का होना ज़रूरी है। अगर है तो हम इसका हवाला चाहते हैं। अगर ऐसा नहीं है तो हकमे क़ैद पर मुनाज़रा को मौकूफ़ क्यों किया जाता है? तो मौलवी इरशाद ने फिर वही रट लगाई कि भिवंडी के मुनाज़रा में सुन्नियों की मुनाज़रा कमेटी उस क़ैद को तसलीम कर चुकी है। लिहाज़ा हम बग़ैर किसी सालिस और हकम के मुनाज़रे को तैयार नहीं। सुन्नियों ने कहा : उसे हम जनाब का फ़रार और देवबंदी मक्तबा-ए-फ़िक्र की हज़ीमत तसव्वर करते हैं। मगर रेज़ल्ट व नतीजे में ये बात नज़र आई कि **"जमालू भुस में आग लगा कर रातों-रात ग़ायब"** नागपुर के इजलास में मौलवी इरशाद और उनके साथियों ने अक्सर वही बातें दोहराईं जिसका जवाब मैं अपनी किताब **"इंकिशाफ़ात"** में दे चुका हूँ। **"अल-मलफ़ूज़"** वग़ैरा पर देवबंदियों के चंद बोगस और बे-जान सवालात थे मगर उनका ख़्याल था कि ये वो सवालात हैं जिसके जवाबात न हो सकेंगे मगर ब-हम्दुलिल्लाह उनके एक-एक सवाल का दंदाने शिकन मुसकत और मुदल्लल जवाब **"इंकिशाफ़ात"** के ज़रिया उन्हें दे दिया गया। इसी मौज़ू पर फ़कीहे अस्र हज़रत मौलाना मुफ़्ती मुहम्मद शरीफुल-हक़ साहब क़िब्ला की **"अत्तहक़ीक़ात"** नामी किताब भी क़ाबिले मुतालआ है। जो हवालाजात की ज़ंजीरों में जकड़ी हुई एक नादिर व नायाब किताब है। जिसमें तहक़ीक़ व रीसर्च और तंक़ीद व तब्सरा का भरपूर हक़ अदा किया गया है। अलबत्ता नागपुर के इजलास में पुरानी बातों के अलावा इफ़्तिराक़ व इंतेशार की आग भड़काने के लिए एक नई तकनीक इस्तेमाल की गई। इस मुल्क की इल्म-परवर, इल्म-दोस्त, मज़हब व मज़हबी आशना "अंसारी बिरादरी" मसलके आला हज़रत से मुंहरिफ़ और बरगश्ता हो जाए।

ख़ुदा का शुक्र है ये वो बिरादरी है जिसने आज हिन्दुसतान में मदारिसे अरबिया व फ़ारसिया का "कम-व-बेश" पचास फ़ीसद बोझ अपने कांधे पर उठा रखा है और उलूमे अरबिया से जो शग़फ़ व लगाव अंसारी बिरादरी को है वो दूसरों में अलल-उमूम अक़ल्ले क़लील है।

दूसरी बिरादरियां इन उलूम की ताईद व हिमायत तो ज़रूर कर देती

है मगर अमलन इसमें उसका हिस्सा ज़ीरो के लगभग है। आज जित्ने उलमा, हुफ़्फ़ाज़ व कुर्रा अंसारी बिरादरी में मिलेंगे दूसरी बिरादरियों का आग़ोश इस नेमते कुब्रा से ख़ाली है। चूंकि नागपुर का इज्लास "मोमिनपुरा महल्ला" में था इसलिए इस बिरादरी को उक्साने और भड़काने के लिए मौलवी इरशाद अहमद वग़ैरा ने **'फ़तावा रिज़वीया'** से इस इबारत को पेश किया जो मसअला कुफ़्व से मुतअल्लिक़ है ताकि इस हवाले को देख कर अंसारी बिरादरी बर–अफ़रोख़्ता होकर आला हज़रत फ़ज़िले बरैलवी से बरगश्ता हो जाए। ये हैं वो हज़रात जो 'एक बनो और नेक बनो' का झूठा और खोखला नारा लगाते हैं।

इत्तिहाद व इत्तिफ़ाक़ के नाम नहाद अलमबरदार मौलवीयों से पूछो कि क्या मुल्क में इत्तिफ़ाक़ व इत्तिहाद पैदा करने की यही सूरत है जो तुमने इख़्तियार कर रखी है? मुसलमानों की शीराज़ाबंदी तोड़ने और उनमें इफ़तराक़ व इंतिशार की आग भड़काने की नई–नई राहें और नित नए हथियार तलाश करते रहे हो। गोया तुमसे मुसलमानों का इत्तिहाद व इत्तिफ़ाक़ एक आंख देखा नहीं जाता। दूसरों की आंख का तिंका देखने वालो! अपनी आंख का शहतीर क्यों नहीं देखते? **'फ़तावा रिज़वीया'** में इमाम अहमद रज़ा का फ़त्वा तो तुम्हें मिल गया जो उनकी अपनी बात नहीं बल्कि अइम्मा–ए–अहनाफ़ के अक़वाल के नक़ल की हैसियत है। यक़ीनन हम सय्यदना इमाम अहमद रज़ा रजि० को अपने अस्र का इमाम व मुजद्दिद जानते हैं। मगर हम इन्हें मुजतहिद नहीं तसलीम करते। वो ख़ुद सय्यदना इमामे आज़म अबू हनीफ़ा रजि० के मुक़ल्लिद थे।

मसाइल में वो खुद अपनी तरफ़ से कुछ नहीं फ़रमाते बल्कि जिन मसाइल में फ़ुक़्हा–ए–अहनाफ़ ने जो कुछ फ़रमाया है वो अपने फ़त्वा में उन्हीं अक़वाल को नक़ल फ़रमा देते हैं। अगर नक़्ले अक़वाल कोई इल्ज़ाम है तो ये इल्ज़ाम सय्यदना इमाम अहमद रज़ा के सिर नहीं बल्कि उनके फ़ुक़्हा–ए–किराम के सिर आता है जो सय्यदना इमाम अहमद रज़ा का माख़ज़ व पेशवा है। नादानो! रज़ा दुश्मनी में तुम्हें इतना भी होश नहीं रह गया कि जो तुम्हारे तरकश का तीर किसके सीने पर पैवस्त हो रहा है। तुमने ये भी नहीं देखा कि जो ऐसी चिंगारी तुमने फेंकी है इससे किसका

दामन सुलग रहा है। तुम्हें तो सिर्फ़ इससे काम कि कोई ऐसा मैटर इस्तेमाल करो जिससे मुसलमानों की यक्जहती पारा–पारा हो जाए। अगर ऐसा न होता तो तुम्हारे पेशवा मौलाना अशरफ़ अली थानवी ब्रिटिश गवर्नमेंट से छः सौ रुपया[१] माहाना का वज़ीफ़ा क्यों पाते? बरतानिया गवर्नमेन्ट की ये नवाज़िशात व इनायात इसीलिए थीं कि रूपया ले कर मुसलमानों को लड़ाते रहो। मुझे अच्छी तरह मालूम है कि तुम्हारे असलहाख़ाने का कोई नया हथियार नहीं है। मुसलमानों को आपस में लड़ाने उनमें फूट डालने का हथियार तुम्हें अपने पुरखों से मिला है। इस तरह तबलीगी जमाअत की भी इब्तदाअन ब्रिटिश गवर्नमेन्ट रुपया देती रही क्या? नमाज़ व कलिमा के प्रचार के लिए हरगिज़ नहीं। महज़ इसलिए कि रुपया लेते रहो और मुसलमानों को लड़ाते रहो। ये तुम्हारा आज का पेशा नहीं बल्कि पुराना और बहुत पुराना है।

तुम्हारे पुरखों ने जो कुछ किया है वही तुम भी कर रहे हो। मौलवी इरशाद वग़ैरा का ख़्याल था कि हमारा ये मैटर तीर–ब–हदफ़ की हैसियत रखेगा लेकिन नागपुर की ग़य्यूर, होशमंद, दूर–अंदेश और पढ़ी लिखी अंसारी बिरादरी ने उस पर कोई तवज्जह नहीं दी। हर चंद कि उलमा–ए–देवबंद ने ख़लफ़शार मचाने की कोशिश की मगर नागपुर के मुसलमान उनके काले करतूतों से बहुत अच्छी तरह वाकिफ़ हैं और उनके माज़ी का रिकार्ड अभी तक वो भूले नहीं है। वो जानते हैं कि आज से तकरीबन निस्फ़ सदी पेशतर अकाबिरे देवबंद ने अंसारी बिरादरी पर नारवा हमले किये थे और उनकी इज़्ज़त व शराफ़त को अपने हाथों खिलौना बनाना चाहा था। मगर क़स्बा मऊनाथ भंजन (ज़िला–आज़म गढ़) के ग़य्यूर मुसलमानों में अकाबिरे देवबंद के ख़िलाफ़ जब सदाए एहतजाज बलंद की तो उलमाए देवबंद ने उनके सामने हथियार डाल दिए। अगर इसकी तफसील देखनी हो तो मेरी किताब "**खून के आंसू** (जिल्द दोम)" का पेज १२६–१२७–१२८–१२६–१३० मुलाहज़ा फ़रमाइए।

उलमा–ए–देवबंद की फ़ुज़ूल बकवास पर मऊनाथ भंजन जमीअतुल अंसार ने जो किताबचा शाय किया था उसके टाइटल पेज की सुर्ख़ी ये

(१) हवाला के लिए ख़ून के आंसू क़हर आसमानी और इंकिशाफ़ात में मुलाहिजा फरमाइए।

थी।" डूब मरने की जगह है दोस्तो"

मुफ़्ती साहब देवबंद और ग़रीब पेशावर अकवाम, मुफ़्ती साहब देवबंद और हकीमुल-उम्मत मौलाना अशरफ़ अली थानवी के इल्मी तहज़ीब का नमूना और करोड़ों पेशावर मुसलमान भाईयों की तौहीन व तज़लील............

मैं इस हवाले को अब दुहराना नहीं चाहता। "**खून के आंसू**" में भी जो कुछ मैंने लिखा है था वो बादले–न–ख़्वासतां था। मैं ऐसे मबाहिस से ज़ेहनी उलझन और क़ल्बी दुख महसूस करता हूँ। मगर उस वक़्त नागपुर के हालात ने मज़बूर किया कि इसकी इस तरह निशानदही कर दी जाए ताकि दिलों का मैल धुल जाए और जेहनों का गुबार छट जाए। मेरी हैसियत जारेह की नहीं बल्कि मुदाफ़े की है। चूंकि मुल्क की एक इल्म–दोस्त बिरादरी की आड़ ले कर हमारे इमाम और हमारे मसलक को मजरूह करने की नाकाम कोशिश की गई है। इसलिए हमारा अख़्लाक़ी फ़रीज़ा है कि मसअला की असल नौइयत हम अवाम के कोर्ट में पेश कर दें।

हज़रात! फ़िक्हः की कुतुबे मुतादावला में 'बाबुल–कुफ़्व' का सराहतन तज़किरा है। अहनाफ़ ने मआज़ल्लाह! किसी की तज़लील व तहक़ीर की नियत से इसको क़ायम नहीं किया बल्कि निकाह व शादी में मुआशरा के इस नशेब व फ़राज़ को मलहूज़ रखा जिससे अज़्दवाजी ज़िंदगी का मुस्तकबिल तारीक न हो सके। निकाह के मफ़हूम में ज़िंदगी के जो इशारे मुज़्मर हैं उनके निबाह में कोई रुकावट न हायल हो। बल्कि ज़िंदगी का ये सफ़र बग़ैर किसी उलझन के तय होता रहे। यह एक ऐसा ज़ाब्ता–ए–ह्यात है जो नक़ल से हट कर खुद अक़्ल का भी यही मुक़्तज़ा है। वरना इस्लाम ब–हैसियत मुसलमान किसी भी मुसलमान पर इस क़िस्म का काई पहरा नहीं बिठाता। चुनांचे किताबों के हवालजात से हट कर खुद इंसानी रस्म व रिवाज में तमद्दुन और मुआशरा का ख़्याल रखा जाता है। अगर गहराई से महसूस किया जाए तो गोया ख़ारजी दबाव नहीं। बल्कि ये एक तबई व फ़ितरी तक़ाज़ा मालूम होता है और ज़िंदगी के आम तजरबात ने भी इंसानी ज़ेहन व फ़िक्र को इसी राह पर लगाया है।

बहरहाल मुझे कहना ये है कि सय्यदना इमाम रज़ा ने जो कुछ तहरीर

फ़रमाया है ये उनका अपना कहना नहीं है कि बल्कि फुक़्हा–ए–अहनाफ़ ने जो कुछ फ़रमाया उसी की तरजमानी है। लेकिन अब मौलवी इरशाद से ये दरयाफ़्त कीजिए कि आपके अकाबिर उलमा ने जो अपनी तरफ़ से इरशाद फ़रमाया महज़ अंसारी बिरादरी को दुख पहुंचाने और उनकी तहक़ीर व तज़लील की नियत से आपके पास इसका क्या जवाब है? अब इस ज़ैल में आप चंद हवालजात मुलाहज़ा फ़रमाइए। जिस पर इंसानियत व शराफ़त सुब्हे क्यामत तक मातम करती रहेगी –

कांटों के इंतक़ाम की शायद ख़बर न थी
फूलों पे हाथ डालन वाले उछल पड़े

'मजालिसुल-हिकमत' यानी मलफ़ूज़ात मौलाना अशरफ़ अली थानवी के पेज ७२–७३ का एक हवाला मुलाहज़ा फ़रमाइए –

महमूद और मक़सूद का फ़र्क़ बताते हुए मौलाना थानवी फ़रमाते हैं –

''अगर उम्दा हालात महसूस हों फ़बिहा वरना कुछ मलाल न करे और अगर वो शराइत मौजूद नहीं हैं तो ख़्वाह उस के ज़ोम में मेराज ही क्यों न होने लगे मगर उसको जुलाहे वाली मेराज समझे'' अलहाइ क इज़ा सल्ली यौमैने इंतज़रल-मेराज'

(मजालिसुल हिकमत मौलाना थानवी ,पेज ७२-७३)

मौलाना थानवी ने जो कुछ फ़रमाया है ये फुक़्हा–ए–अहनाफ़ का क़ौल नहीं है बल्कि खुद ये उनके नफ़्से अम्मारा का हुक़्म है कि अंसारी बिरादरी पर ऐसे हमले करो जिससे उनकी तज़लील व तज़हीक हो। अगर उनके दिल में इस बिरादरी की इज़्ज़त व अज़मत का मामूली भी एहसास होता तो हरगिज़–हरगिज़ ऐसा न कहते। थानवी साहब ने कह भी दिया था तो उनके अज़नाब को उसे छापना नहीं चाहिए था। ये कोई वह्य इलाही नहीं है कि अगर उसे छोड़ दिया जाएगा तो कुरआन की एक आयत छूट जाएगी। मआज़ल्लाह! लेकिन यहां तो पूरी पर्टी तय कर चुकी है कि ऐसी चिंगारी छोड़ो जिससे मुसलमानों का दामने इत्तिहाद भस्म हो जाए। कहां हैं मौलवी इरशाद, राग़िब भोपाली, मौलवी नूर मुहम्मद टांडवी! नागपुर महल्ला मोमिनपुरी ही के जल्से में वो इस इबारत की सफ़ाई देकर मुसलमान भाईयों को मुतमइन करें। मौलाना थानवी की एक दूसरी इबारत

मुलाहज़ा फ़रमाइए –

''हां! इतना ज़रूरी है कि एक-दो के कहने से अलग न होगा क्योंकि ये तो लह्व व लइब हो जाएगा। जब अलग करना हो दो आदमी मुझसे कह दें फ़ौरन अलग हो जाऊँगा। इसमें इस बात की भी कै़द नहीं कि वो कहने वाले सरबर आवरदा लोग हों। एक जुलाहा को भी ये ख़्याल पैदा हुआ तो नौ आदमियों को अपना हम ख़्याल करे और मुझको ज़बानी य तहरीरी इत्तिला कर दे। बस काफ़ी है।''

('मजालिसुल-हिकमत' मौलाना थानवी, पेज २०)

ये कोई इब्रानी इबारत नहीं है। उर्दू की एक बहुत ही सादा ज़बान है। अह्ले ज़बान बहुत अच्छी तरह समझ सकते हैं कि ''सरबर-आवर्दा'' के मुक़ाबिल जिस लब व लेहजे या जिस तेवर में लफ़्ज ''जुलाहा'' इस्तेमाल किया गया है किस हद तक इस बिरादरी की तंक़ीस और तौहीन का जज़्बा है। मुझे इन इबारतों के नक़्ल करने में इंतहाई दुख और मलाल है मगर शातिमाने मुस्तफ़ा अलैहिस्सलाम व सना ने हमलोगों से बरगश्ता करने के लिए जो हथियार इस्तेमाल किया है इसकी मुदाफ़अत में हम उन्हीं के अस्लहाख़ाने के हथियार क़ौम के हाथों में दे रहे हैं ताकि वो इसी से मज़लूम की हिफ़ाज़त और ज़ुल्म का सिर क़लम कर सके! इसी ज़िम्न में **'अरवाहे सलासा'** का एक हवाला मुलाहज़ा फ़रमाइए –

''हिकायत नम्बर २६१'' मौलवी फ़ारूक़ साहब ने फ़रमाया कि मौलाना अहमद हसन साहब ''देवबंदी'' ने इरशाद फ़रमाया कि जब मैं अव्वल-अव्वल मौलाना क़ासिम साहब की ख़िदमत में हाज़िर हुआ तो मौलाना मुहम्मद साहब की ख़िदमत में एक जुलाहा आया और दावत के लिए अर्ज़ किया। मौलाना मुहम्मद साहब ने मंजूर फ़रमाया। ये अम्र मुझको बहुत नागवार हुआ। इतना कि जैसे किसी ने गोली मार दी कि भला जुलाहे की दावत भी मंज़ूर कर ली अलख़''

(अरवाहे सलासा, पेज २७४)

आवाज़ दो इरशाद को। इरशाद कहां है? अपने मुजरिमाना किरदार पर परदा डालने के लिए **'फ़तावा रिज़वीया'** का नाम लेते हो। पहले अपने घर की ख़बर लो फ़िर सय्यदना इमाम अहमद रज़ा की चौखट पर हाज़री देना।

संग व आहन बे-न्याज़ ग़म नहीं
देख हर दीवार व दर से सिर न मार

लीजिए 'बहिश्ती ज़ेवर' का एक हवाला मुलाहज़ा कीजिए –

मसअला : ''पेशा में बराबरी ये है कि जुलाहे दर्ज़ियों के मेल और जोड़े के नहीं। इसी तरह नाई, धोबी वग़ैरा भी दर्ज़ी के बराबर नहीं।

('बहिश्ती ज़ेवर' हिस्सा चहारुम, पेज १७)

अब टांडवी साहब और इरशाद साहब से दरयाफ़्त कीजिए कि मौलाना अशरफ़ अली थानवी पर क्या हुक्म है? वाज़ेह रहे हम किसी पहल, छेड़छाड़ या 'आ बैल मुझे मार' के क़ायल नहीं। लेकिन हमारे अकाबिर ने इतना ज़रूर बताया है कि 'छेड़ो मत और छिड़ जाए तो छोड़ो मत'– पर अमल करना। चुनांचे मुंदर्जा बाला हवालजात इसी उसूल के आईनादार हैं। हमें उलमा–ए–देवबंद से कल भी शिकायत थी और आज भी है कि उनके अकाबिर ने अंसारी बिरादरी की तज़हीक व तज़लील में कोई कसर नहीं उठा रखी। उस वक्त तक शिकायत रहेगी जब तक वो अपनी उन नाशाइस्ता हरकतों पर नादिम व शर्मिन्दा होकर माफ़ी के तलबगार न हों और इसका एलान कर दें कि अब आइंदा ये इबारात हमारी किताबों मे हरगिज़–हरगिज़ न छपेगी।

अहले सुकूं से खेल न ऐ मौजे इंबिसात
इक दिन उलझ के देख किसी बदनसीब से

तबलीग़ी जमाअत से मुतअल्लिक़

एक सनसनीखे़ज़ इंकिशाफ़

तो खु़द को फ़रिश्ता न समझ वाइज़े नादां
दुनिया में तेरे रंग के इंसान बहुत हैं

नागपुर के इज्लास में मौलाना इरशाद ने तबलीग़ी जमाअत का खूब–खूब गुन गाया है। गाना भी चाहिए। सब एक ही थैले के चट्टे–बट्टे हैं। तबलीग़ी जमाअत के ओमरा का कहना है कि हम किसी से कुछ नहीं लेते। **फ़ी सबीलिल्लाह** हम गली–गली, कूचा–कूचा का गश्त करते हैं हत्ता कि अपना राशन पानी साथ ले कर चलते हैं। इसके खि़लाफ़ हमने कुछ कहा तो आपने हमें मुंह चिढ़ाया हम पर इल्ज़ाम लगाया लेकिन अगर इस अख़बारी रिर्पोट को क्या कीजिएगा जो आपके गले का फंदा और सिर पर लटकी तलवार है। मुलाहज़ा फ़रमाईए। रोज़नामा हिन्दुस्तान २७ फ़रवरी १९७७ई॰ मुम्बई

तबलीगी जमाअत को ग़ैर–मुल्की माली इम्दाद कुबूल करने पर पाबंदी। मुल्क भर में १०६ जमाअतों और इदारों की फे़हरिस्त शाय।

नई देहली, २६ फ़रवरी। मरकज़ी हुकूमत ने १०६ तंज़ीमों और जमाअतों पर पाबंदी आयद कर दी है कि वो बग़ैर पेशगी इजाज़त के ग़ैर-मुल्की माली इम्दाद कुबूल नहीं कर सकतीं। सरकारी हुक्म में जिन इदारों पर ग़ैर-मुल्की इम्दाद कुबूल करने की पाबंदी आयद कर दी गई है। सरकारी गज़ट में १०६ इदारों और उनमें ३७ ट्रेड यूनियन २५ नौजवानों जमाअतों का ज़िक्र है। तलबा की अंजुमन, छः ख़्वातीन की अंजुमन ३८ मुतफ़र्रिक़ तर्ज़ की अंजुमनें शामिल हैं जिनमें ऐसी भी अंजुमने शामिल हैं जो किसी सियासी जमाअत का दुमछल्ला हों। इस सरकारी फ़रमान के खि़लाफ़ अमल करने वाले को सज़ाए क़ैद या जुर्माना की सज़ा दी जा सकती है। ग़ैर-मुल्की इम्दाद (रेगूलेशन) के क़ानून १९७६ई॰ की दफ़ा ५ (१) में कहा गया है कि सियासी नौईयत का कोई इदारा या कोई सियासी जमाअत ग़ैर-मुल्की इम्दाद कुबूल

नहीं करेगी। बजुज़ इस हालत में कि इसकी पेशगी इजाज़त मरकज़ी सरकार से ले ली गई हो। पाइबंदी आयद जमाअतों और इदारों की फ़ेहरिस्त सेन्ट्रल गर्वनमेन्ट एक सरकारी गज़ट में शाय करेगी। सरकारी प्रेस नोट के मुताबिक़ मरकज़ी हुकूमते हिन्द ने एक ग़ैर-मामूली गज़ट में १०६ पाबंदी आयद इदारों का नाम शाय किया है। चंद मख़सूस जमाअतों का यहां ज़िक्र किया जा रहा है। (१) मुस्लिम कॉन्फ़्रंस, जम्मू व कश्मीर, श्री नगर (२) इस्लामी स्टडी सर्किल, जम्मू कश्मीर, श्री नगर (३) अवामी ऐक्शन कमीटी, जम्मू व कश्मीर में वाइज़ मंज़िल राजोरी कदाई, श्री नगर (४) जम्मू कश्मीर इंक्लाबी फ़रंट, श्री नगर और कई दीगर

क्या इस अख़्बारी रिपोर्ट के बाद किसी के मुंह में जुबान है जो ये कह सके कि तबलीगी जमाअत कहीं से कुछ नहीं लेती। अगर आप ग़ैर–मुल्की माली इम्दाद कुबूल नहीं करते तो हुकूमते हिन्द ने आप पर पाबंदी क्यों लगाई?

आख़िरश! सच बोलने में आपका क्या बिगड़ता है। आप भी इंसानों ही की बस्ती में रहते हैं। हर शख़्स ज़रूरियाते ज़िंदगी से वाक़िफ़ है। आप अपने को लाख छुपाओ मगर न तो इंसानी ज़ेहन व फ़िक्र पर पहरा बिठा सकते हो और न ही होंठों पर ताले लगा सकते हो। अपने मुंह मियां मिट्ठू न बनो बल्कि ये सोचो।

कहती है तुझको ख़लक़े ख़ुदा ग़ाइबाना किया

हिन्दुस्तान ही का नहीं बल्कि दुनिया का मुसलमान समझ चुका कि आप किस के एजेंट व दलाल हैं। तबलीगी जमाअत की मिसाल 'हाथी के दांत दिखाने के और खाने के और'–जैसी है। अब दुनिया ने आपके दोनों दांत देख लिए। तबलीगी जमाअत का कहना है हम तो सिर्फ़ कलिमा और नमाज़ के लिए निकले हैं। हम अक़ाइद से कोई बहस नहीं करते। ये खुला हुआ दज्ल और फरेब है। पूरे मुल्क का मुशाहदा और तजरबा है कि तबलीगी जमाअत के क़दम जहां भी जम गए वहां से मीलाद रुख़्सत, क़याम ग़ायब, न्याज़ व फ़ातिहा पर पहरा, उर्स व चादर पर शिर्क व बिदअत का इल्ज़ाम, इल्मे ग़ैबे रसूल का इंकार–गर्ज़ कि सुन्नी मोतकीदात और

मामूलात व मरासिम पर तीशाज़नी उनका शेवा है। इसलिए आबादियों को अगर उनके फ़ित्ने से महफ़ूज़ रखना है तो अपनी मसाजिद में सुन्नी तबलीग़ी जमाअत के ज़ेरे एहतमाम दर्से कुरआन का सिल्सिला शुरू कर दी जाए। अगर ये भूले–भटके आ जाएं तो उनसे कह दीजिए कि जिस काम के लिए आप निकले हैं वो काम जहां न होता हो वहां जाकर अपना निसाब सुनाइए।

यहां सुन्नी तबलीग़ी जमाअत का निसाब पढ़ा जाता है। हमें आपके निसाब की ज़रूरत नहीं अगर वो आने पर इसरार करें तो उनसे साफ़–साफ़ कह दीजिए कि अगर आप आना ही चाहते हैं तो आईए लेकिन कल तक आपने पढ़ा तो हमने सुन लिया था। अब हम पढ़ेंगे और आपको सुनना होगा। इस जवाब पर चेहरे का रंग मुलाहज़ा फ़रमाइए। एक रंग आएगा और एक रंग जाएगा।

ख़ुदा का शुक्र है राजस्थान के आम हलक़ों में सुन्नी तबलीग़ी जमाअत के "दर्से कुरआन" का प्रोग्राम अमलन कुबूल कर लिया गया। मकराना, कचामन सिटी, बीकानेर, बासनी, कमहारी, भिलवाड़ा, पाली, जौधपुर वग़ैरा में दर्से कुरआन का सिलसिला शुरू हो गया है। आबरू–ए–सुन्नियत हज़रत मौलाना अशफ़ाक़ हुसैन साहब नईमी मुफ़्ती–ए–राजस्थान ने सुन्नी तबलीग़ी जमाअत को ब–तैयबे ख़ातिर कुबूल कर लिया है। नीज़ क़ायदे मिल्लत हज़रत मौलाना सैय्यद असरारुल हक़ साहब सद्र ऑल इंडिया मुसलिम मुत्तहिदा महाज़, हज़रत मौलाना मुफ़्ती अख़तर हुसैन साहब दारुल–उलूम रिज़वीया कैथवन व हज़रत मौलाना दाऊद खां साहब प्रिंसिपल मदरसा रिज़वीया उदय पुर और दीगर उलमा ने इस दीनी तहरीक को न सिर्फ़ कुबूल कर लिया बल्कि अमलन उनकी हमदर्दियां शरीके हाल हो गई। पूरे राजस्थान में जमाअती काम तेज़ी से बढ़ रहा है। इस वक़्त भी राजस्थान में मुक़र्रिर गिरामी जनाब मौलाना अब्दुर्रज़्ज़ाक़ जबलपुरी ऑर्गनाइज़र सुन्नी तबलीग़ी जमाअल फ़ाज़िले गिरामी जनाब मौलाना अहमद मिस्बाही मुबल्लिग़ सुन्नी तबलीग़ी जमाअत सरगरमे अमल हैं। तंहा किसी एक का काम नहीं है पूरी सुन्नी बरादरी का मुश्तरका मसअला है। इसलिए इस दीनी तहरीक को आम से आम तर करने के लिए

हर एक को हिस्सागीर व शरीककार होना चाहिए।

मैं शक्रगुज़ार हूं जनाब अलहाज साहब क़ादरी रिज़वी सद्र मदरसा दस्तगीरयां, मंडगोड़ व जनाब अलहाज मुहम्मद सईद साहब क़ादरी रिज़वी व जनाब हाजी मुहम्मद अली साहब व हाजी मुहम्मद अली जिन्ना साहब–कि ये हज़रात अमलन मेरे कुव्वते बाज़ू बन चुके हैं। उनकी हैसियत तमाशाइयों जैसी नहीं है। बहुत–से हज़रात खड़े तमाशा देख रहे हैं कि इस तहरीक का अंजामकार क्या होगा? खुदा–ए–क़दीर इख़्लासे नीय्यत से इस दीनी तहरीक को आगे बढ़ाने के अस्बाब व ज़राए फ़राहम फ़रमाए। आमीन।

कांटों से गुज़र जाता हूँ दामन को बचा कर
फूलों की सियासत से मैं बेगाना नहीं हूँ

एक ग़लत फ़हमी का इज़ाला

तिल के ओट पहाड़

दे मुझको शिकायत की इजाज़त कि सितमगर
कुछ तुझको मज़ा भी मेरे आज़ार में आए

नागपुर के हालिया इजलास में उलमाए देवबंद ने जो धमाचौकड़ी की है इसका एक गोशा ये भी है कि मौलवी इरशाद अहमद ने "**तजानिब अह्लेसुन्नत**" से अवाम को ग़लत ज़ेहन देने की सई–ए–नाकाम की है। जिसका खुलासा ये है कि उलमा–ए–अह्ले सुन्नत अपने सिवा किसी को मुसलमान समझते ही नहीं। इस सिलसिले में ज़रूरी है कि चंद ऐसे हक़ाइक़ व शवाहिद आपके सामने पेश किये जाएं जिससे आईने में आप उलमा–ए–देवबंद को अच्छी तरह देख सकें!

अब तफ़सील का मौक़ा नहीं। किताब प्रेस जा रही है। इसलिए सिर्फ़ चंद शवाहिद पर इक्तिफ़ा किया जाएगा। इंशाअल्लाह तआला आइंदा हस्बे ज़रूरत इस मौज़ू पर मुस्तक़िल किताब लिखी जाएगी ताकि देवबंदियत का असल रूप आपके सामने आ सके।

जमाअते इस्लामी देवबंद की नज़र में :

"फ़रमाया (मौलाना हुसैन अहमद, साबिक़ सद्र, देवबंद) इस्लाम के नाम पर बहुत-सी जमाअतें वुजूद में आईं लेकिन ये जमाअत जो 'जमाअते इस्लामी' के नाम से है उन तमाम जमाअतों से बहुत ज़्यादा ख़तरनाक है। आज मौलाना सिब्ग़तुल्लाह, मौलाना अमीन अहसन साहब इस्लाही जो इस जमाअत के सरगरम रुक्न थे, इस जमाअत से अलग हो कर हज़रत के इस इरशाद की अमलन तस्दीक़ कर रहे हैं। (शैखुल-इस्लाम नम्बर पेज१५६)

नोट : मालूम हुआ कि उलमाए देवबंद की नज़र में तमाम फ़िर्क़ा हाए बातिला में सबसे ज़्यादा ख़तरनाक जमाअते इस्लामी है।

दूसरा हवाला........

रवाफ़िज़ उलमा-ए-देवबंद की नज़र में :

''रवाफ़िज ने तो सिर्फ़ चंद सहाबियों की तौहीन की और इस ''जमाअते इस्लामी'' ने तो तमाम असहाबे किराम रिज़्वानुल्लाह अलैहिम अजमईन की तंक़ीस व तौहीन कर दी। ये कहते हैं सहाबा मेयार हक़ नहीं हैं। अलख़।'' ('शैखुल-इस्लाम नम्बर' पेज, १५६)

नोट : गोया रवाफ़िज़ और जमाअते इसलामी तौहीने सहाबा में यक्सां व बराबर हैं। लिहाज़ा उलमा–ए–देवबंद की तरफ़ से दोनों पर एक ही हुक्म जारी किया जाएगा। चूंकि दोनों तौहीने सहाबा के मुजरिम हैं!

तीसरा हवाला.........

उलमाए देवबंद की नज़र में जमाअते इस्लामी ग़ैर नाजी ''जहन्नमी''है।

''फ़रमाया 'मौलाना हुसैन अहमद जो हदीस में जो उम्मत के बहत्तर (७२) फ़िर्क़ों की ख़बर आई और सिर्फ़ एक फ़िर्क़ा को नाजी और दूसरे तमाम फ़िर्क़ों को ग़ैर-नाजी फ़रमाया है। मैं दलाइल व बराहीन की रौशनी में पूरे शर्हे सद्र से कहता हूँ कि ये जमाअत-इस्लामी भी उन ही ग़ैर-नाजी फ़िर्क़ों में से है।'' (शैखुल-इस्लाम नम्बर' पेज१५६)

नोट : उलमाए देवबंद की नज़र में अह्ले तिशआ तौहीने सहाबा के मुजरिम हैं और जमाअते इस्लामी जहन्नमी फ़िर्क़ों में से एक फ़िर्क़ा है।

ग़ैर-मुक़ल्लिदीन....उलमा-ए-देवबंद की नज़र में :

''एक मर्तबा'' मौलाना रशीद अहमद गंगोही'' ने इरशाद फ़रमाया कि जो लोग उलमा-ए-दीन की तौहीन और उन पर तअ्न व तश्नी करते हैं क़ब्र के अंदर उनका मुंह क़िब्ला से फिर जाता है। बल्कि ये फ़रमाया कि जिसका जी चाहे देख ले। ग़ैर-मुक़ल्लिदीन चूंकि अइम्मा-ए-दीन को बुरा कहते हैं इसलिए उनके पीछे भी नमाज़ पढ़नी मकरूह फ़रमाई।'' ('तज्किरतुर्रशीद' जिल्द दोम, पेज २८२)

नोट : ये इबारत इस क़दर वाज़ेह और ग़ैर–मुबहम है कि किसी तब्सरा की मुहताज नहीं। बस इतनी ज़हमत कीजिए कि अगर ग़ैर–मुक़ल्लिदीन ने इस हवाले को न देखा हो तो उन्हें उसकी ज़्यारत करा दीजिए।

एक और हवाला मुलाहज़ा फ़रमाइए –

उन "ग़ैर–मुकल्लिदीन" की नेकी में शक नहीं लेकिन नेकी बदरजा महबूबीयत नहीं। क्योंकि "ग़ैर–मुकल्लिदीन" हज़रात मैं उमूमन अदब की कमी होती है। बेबाक होते हैं और तक़वा का इहतमाम भी बहुत कम करते हैं जिससे इक गूना इंक़बाज़ होता है।

('**अशरफुस्सवानेह**' जिल्द अव्वल, पेज१२४)

नोट : मौलाना थानवी की नज़र में ग़ैर–मुकिल्लदीन की जो हैसियत है उसे नाज़िरीन ने मुलाहज़ा फ़रमाया।

अब एक हवाला और मुलाहज़ा फ़रमाइए –

"मौलवी अब्दुल–मजीद साहब हज़ारवी फ़रमाते थे कि जब मैंने मौलवी नज़ीर हुसैन देहलवी "**ग़ैर-मुकल्लिद**" के पास हदीस शरीफ़ पढ़नी शुरू की तो दिल अंदर से घबराता था और ख़्वाब में अक्सर ख़िंज़ीर के बच्चे नज़र आया करते कि मेरे चारों तरफ़ फ़िरते हैं।"

('**तजकिरतुर्रशीद**' हिस्सा दोम पेज ३२०)

मुहम्मद बिन अब्दुल-वह्हाब नज्दी मौलाना हुसैन अहमद की नज़र में

"अलहासिल वो "**मुहम्मद बिन अब्दुल-वह्हाब नज्दी**" एक ज़ालिम व बाग़ी, ख़ूंख़्वार, फ़ासिक़ शख़्स था"

(**अश्शहाबुस्साक़िब**, मौलाना हुसैन अहमद सफ़ा ५०)

नोट : एक ही सांस में मौलाना टांडवी ने नज्दी पेशवा को जालिम, बाग़ी, ख़ूंख़्वार फ़ासिक़–सब कुछ कह डाला।

सैय्यदना इमाम अहमद रज़ा – उल्माए देवबंद की नज़र में :

"इसके लिए सिर्फ़ मौलाना हुसैन अहमद की किताब "**अश्शहाबुस्साक़िब**" का मुताला काफ़ी होगा जिसमें आशिके रसूल मुजद्दिद मेयता हाज़िरा सय्यदना इमाम रज़ा फ़ाज़िले बरैलवी रज़िअल्लाह तआला अन्हु को छह सौ चालिस गालियाँ दीं गई हैं। जिसको फ़क़ीहे असर हज़रत मौलाना मुफ़्ती अजमल शाह साहब अलैहिर्रहमः वर्रिज़वान ने '**रद्द शहाबे साक़िब**' में शुमार फ़रमाया है।

एक और दिल–ख़राश हवाला मुलाहज़ा फ़रमाइए :

अल्लामा शामी .....उलमाए देवबंद की नज़र में

''शामी की इस इबारत को रज़ाख़ानी बड़े फ़ख़्र से अपने रिसालों में नक़्ल करते हैं। (''चंद सतर बाद'') मगर उनको क्या मालूम कि इब्ने आबिदीन शामी ने हुकूमत के असर से उन ग़रीबों को बदनाम किया और उन (नज्दियों) के ख़िलाफ़ एक मुत्तहेदा महाज़ क़ायम कर के अपनी दुनिया संभाली। बुरा है इस दुनिया परस्ती और सुनहरी सिक्कों का जिसके एवज़ शामी ने नज्दियों को दिल खोल कर बदनाम किया है। ('आइना-ए-सदाक़त' पेज ४४)

नोट : अल्लामा शामी जैसी अज़ीमुल–मर्तबत शख़्सियत पर ऐसा नारवा और रकीक हमला ये सिर्फ़ देवबंदी मुल्लाओं से हो सकता है जिनके ज़मीर व ख़मीर और फ़ितरत व सरिश्त में तबर्रा और गाली गलौज का अनसर शामिल हैं। मिर्ज़ा गुलाम अहमद क़ादयानी से मुतअल्लिक़ एक हवाला मुलाहज़ा फ़रमाइए।

मिर्ज़ा गुलाम अहमद क़ादयानी उलमाए देवबंद की नज़र में

''अगर ख़ान साहब के नज़दीक बाज़ उलमाए देवबंद वाकई ऐसे ही थे जैसा कि उन्होंने समझा तो ख़ान साहब ''सय्यदना इमाम अहमद रज़ा'' पर उन उलमा-ए-देवबंद की तकफ़ीर फ़र्ज़ थी। अगर वो उनको काफ़िर न कहते तो वो खुद काफ़िर हो जाते। जैसे उलमाए देवबंद ने जब मिर्ज़ा साहब (गुलाम अहमद क़ादयानी) के अक़ाइद कुफ़िया मालूम कर लिए और वो क़तअन साबित हो गए तो अब उलमा-ए-इस्लाम पर मिर्ज़ा साहब और मिर्ज़ाइयों का काफ़िर व मुरतद कहना फ़र्ज़ हो गया। अगर वो मिर्ज़ा साहब और मिर्ज़ाइयों को काफ़िर न कहें तो वो खुद काफ़िर हो जाएंगे। जो काफ़िर को काफ़िर न कहे वो खुद काफ़िर है।'' ('अशद्दुल अज़ाब', पेज १३)

नोट : बावजूद ये कि क़ादयानी कलिमा–गो और अह्ले–क़िब्ला हैं लेकिन जब उलमा–ए–देवबंद मिर्ज़ा गुलाम अहमद क़ादयानी की कुफ़्रियात पर मुत्तला हो गए तो उन पर कुफ़्र व इरतदाद का फ़त्वा दिया। क़ुरबान जाइए! आप किसी कलिमा–गो और अह्ले–क़िब्ला की कुफ़्रियात पर मुत्तला हो जाएं तो आप पर फ़र्ज़ कि आप उसे काफ़िर कहें। लेकिन अगर

आप पर तौहीने नुबुव्वत का जुर्म साबित हो जाए और आपकी तकफ़ीर की जाए तो क़यामते सुग़रा बरपा की जाए। वाजेह रहे आपकी तकफीर में आप ही का उसूल व ज़ाबता इस्तेमाल किया जा रहा है। आपका हाल तो ये है कि –

नावक ने तेरे सैद न छोड़ा ज़माने में

जमाअते इस्लामी......मौलाना थानवी की नज़र में

"मेरा दिल इस तहरीक को कुबूल नहीं करता।"

(अशरफुस्सवानेह, पेज १४ जिल्द आख़िर)

जमाअते इस्लामी.......क़ारी तैय्यब की नज़र में :

"जमाअते इस्लामी के जदीद फ़िक़्हियात और तफ़क्कः की फ़रइयात जो जनाब ने क़लमबंद फ़रमा कर इरसाल फ़रमाई उन्हें पढ़ कर अफ़सोस हुआ। मालूम होता है कि कोई नया फ़िक़्हः तैयार हो रहा है और पुराने फ़िक़्ह का लिबास उतार कर फेंका जा रहा है। इन्ना लिल्लाह अलख़।"

मौलाना शब्बीर अहमद उस्मानी मौलाना हुसैन अहमद की नज़र में

"दारुल-उलूम देवबंद के तलबा ने जो गंदी गालियां और फ़हश इशतिहारात और कारटून हमारे मुतअल्लिक़ चस्पां किए हैं जिनमें हमें अबू-जह्ल तक कहा गया और हमारा जनाज़ा निकाला गया। आप देवबंदी मौलवी साहिबान हज़रात ने उसका भी कोई तदारुक किया था। आपको मालूम है कि उस वक़्त दारुल-उलूम के तमाम मुदर्रिसीन, मोहतमिम और मुफ़्ती समेत बाइस्तिस्ना एक दो के बिलावास्ता मुझ ("मौलवी शब्बीर अहमद उस्मानी") से निस्बते तलम्मुज़ रखते थे।" (मुक़ालमतुस्सद्रैन पेज २१)

नोट : गोया मौलाना हुसैन अहमद और उनके रुफ़क़ाकार की नज़र में मौलाना शब्बीर अहमद उस्मानी की हैसियत अबू–जह्ल जैसी है!

जिस तरह बिच्छू डंक मारने में अपना पराया और दोस्त दुश्मन नहीं देखता उसे तो डंक मारने से काम। जब ज़हर कुलबुलाता हैं तो डंक मारने पर मजबूर होता है। पस ऐसे ही उलमाए देवबंद फ़िज़ूल बकवास और गाली बकने पर मजबूर हैं। अब मौलाना हुसैन अहमद को मौलाना शब्बीर अहमद के कटहरे में देखिए।

मौलाना हुसैन अहमद मौलाना शब्बीर अहमद की नज़र में :

"मौलाना हुसैन अहमद साहब ने मुस्लिम लीग में मुसलमानों की शिर्कत को हराम क़रार दिया और 'क़ायदे आज़म' को 'काफ़िरे आज़म' का लक़ब दिया। (खुत्बा-ए-सदारत शब्बीर अहमद उस्मानी। पेज ४८)

तो मौलवी शब्बीर अहमद उस्मानी ने मौलवी हुसैन अहमद के मुतअल्लिक़ कहा –

"ये परले दर्जे की शक़ावत व हिमाक़त है। **'क़ायदे आज़म'** को **'काफ़िरे आज़म'** कहा जाए।" (**'मुकालमातुस्सद्रैन'**। पेज ३२)

नोट : गोया मौलाना शब्बीर अहमद उस्मानी की नज़र में मौलाना हुसैन अहमद शक़ी और बेवकूफ़ हैं।

मौलाना अबुल कलाम उलमा-ए-देवबंद की नज़र में :

"वो अबुल-कलाम आज़ाद अपनी नफ़्सियानी ख़्वाहिशात का मुत्तबा है और इस्लाम के सीधे-साधे रास्ते से भटका हुआ है और अकाबिरीने मिल्लत का सख़्त बे-अदब है।

(अलब्यान मुकद्दमा मुश्किलातुल-कुरआन मौलाना अनवर शाह कश्मीरी देवबंदी। पेज ३४)

नोट : मौलाना अबुल–कलाम आज़ाद से मुतअल्लिक़ मौलाना मुहम्मद अनवर शाह कशमीरी देवबंदी की जो राय थी उसे उन्होंने खुले बंद जाहिर कर दिया कि अबुल–कलाम आज़ाद नफ़्सानी ख़्वाहिशात का मुत्तबा है और सीधे–रास्ते से भटका हुआ है।

सरसय्यद अहमद ख़ां उलमा-ए-देवबंद की नज़र में

"वो सरसय्यद बे–दीन मुलहिद या जाहिल गुमराह है। वो खुद गुमराह हुआ और उसने लोगों को भी गुमराह किया है और अगर उसका कुफ़्र व अलहाद ज़्यादा न होता तो मुम्किन था कि लोग उस पर मुकम्मल ईमान ले आते। पस देख कि उस मुलहिद बेवकूफ़ की बेवकूफ़ी कहां तक पहुंच गई है।" (**अल-ब्यान मुकद्दमा मुश्किलातुल-कुरआन**। पेज ३२)

नोट : सरसय्यद अहमद ख़ां से मुतअल्लिक़ मौलाना अनवर शाह कश्मीरी देवबंदी को जो कहना था उन्होंने ग़ैर–मुबहम और वाजेह तौर पर कह दिया। अब ज़रूरत इसकी है कि ये इबारत मुस्लिम यूनिवर्सिटी

अलीगढ़ तक पहुंचा दी जाए ताकि यूनिवर्सिटी में जब कभी क़ारी तैय्यब साहब का प्रोग्राम हो तो इस इबारत पर उनसे इसतिफ़्सार किया जा सके!

मौलाना शिब्ली नोमानी उलमा-ए-देवबंद की नज़र में

"बेशक वो शिब्ली सरसय्यद के बारे में अज़हद खुश एतक़ादी रखता है। पस या तो ये मुदाहनत फ़िद्दीन है। और उन दोनों सरसय्यद व शिब्ली की रूहें इल्म व मक़ासिद में यक्जा हैं। और हमने लोगों के सामने शिबली का ये पोल इसलिए ज़ाहिर किया है कि दीने इस्लाम में किसी काफ़िर के कुफ़्र से चश्मपोशी करना हरगिज़ जायज़ नहीं।"

('अल-ब्यान मुश्किलातुल-कुरआन' मुहम्मद अनवर शाह कशमीरी, देवबंदी पेज ३२)

नोट : मौलाना अनवर शाह कशमीरी देवबंदी ने मौलाना शिब्ली नोमानी के बारे में जो कुछ कहा उसे नाज़िरीन ने पढ़ लिया लेकिन हवाले की आख़री सतर बहुत ही क़ाबिले तवज्जह है।

यानी "दीने–इस्लाम में किसी काफ़िर के कुफ़्र से चश्म–पोशी करना हरगिज़ जायज़ नहीं।"

बग़ैर सोचे–समझे कभी ये लोग भी सच बोल जाते हैं, बाद में पछतावा ही क्यों न हो। अब कह लेने दीजिए अगर मौलाना शिब्ली नोमानी का कुफ़्र छुपाया नहीं जा सकता तो तौहीने नुबुव्वत के मुजरिमीन का जुर्म क्यों कर छिपाया जा सकता है? **'हिफ़्ज़ुल-ईमान'** व **'बराहीने क़ातिआ'** वग़ैरा की कुफ़्री इबारात पर जब उलमाए देवबंद की तकफ़ीर की जाती है तो मुल्क में शोर व हंगामा क्यों बरपा किया जाता है? हम आप ही का उसूल आप पर इस्तेमाल करते हैं। 'इस्लाम में किसी काफ़िर के कुफ़्र से चश्मपोशी करना हरगिज़ जायज़ नहीं'! आपको तो हमें दाद देनी चाहिए कि उसूल के इस्तेमाल में हमने इंसाफ़ व दियानत का खून नहीं होने दिया मगर इसको क्या कहिये आप मौलाना अबुल–कलाम आज़ाद, सरसय्यद अहमद खां, मौलाना शिब्ली नोमानी, मौलाना मौदूदी, मदर्सतुल–इस्लाह सरायमीर, अल्लामा इब्ने आबिद शामी, रवाफ़िज़ व ख़्वारिज़, गुलाम अहमद क़ादयानी, सय्यदना इमाम अहमद रज़ा फ़ाज़िल बरैलवी, मुहम्मद बिन अब्दुल–वह्हाब नज्दी वग़ैरा–वग़ैरा–को जो भी मन में आए कह जाए–काफ़िर, बेदीन,

ज़ालिम, खूंख़्वार, फ़ासिक़, राह से भटका हुआ, जहन्नमी, अबू–जह्ल, मदाहिन, जाहिल–ग़र्ज़ कि उलमा–ए–देवबंद के सिवा ख़ुदा की ज़मीन पर जो लोग भी बसे टिके हैं वो सब–के–सब बेदीन, काफ़िर, गुमराह, जहन्नमी वग़ैरा हैं। ये हैं उलमा–ए–देवबंद के वो काले करतूत जिसको उन्होंने नुमाइशी इत्तिहाद व इत्तिफ़ाक़ और 'एक बनो नेक बनो' के खोखले नारों में छुपा रखा है। अब क़ौम बहुत होशियार हो चुकी है। उसने आपके नुमाइशी सज्दों और बे–वज़न नारों की हैसियत समझ ली है। वो इस बात का आसानी से फैसला कर सकती है कि अगर आप किसी कलिमा–गो को और अह्ले क़िब्ला को कलिमाते कुफ़िया की बिना पर काफ़िर, मुर्तद, बेदीन कह सकते हैं तो आप जैसे तौहीने नुबुव्वत के मुजरिमीन को क्यों कर माफ़ किया जा सकता है? जो उसूल व ज़ाबता अपने क़ादयानियों वग़ैरा पर इस्तेमाल किया है बस ज़ाब्ते की वही तलवार आपका भी सिर क़लम कर रही है। अगर ऐसा है तो वाविला क्यों ?

लम्हा-ए-फ़िक्रिया !

छोड़े जाता हूँ मैं सरमा-ए-ग़म ऐ मंज़र
जाने अब किसके मुकद्दर में ये दौलत होगी

हज़रात! ये कोई मक़ामे हैरत व इसतेजाब नहीं। जिस क़ौम की सरकशी व बग़ावत इस हद तक पहुंच गई हो कि वो खुदा–ए–वहदहू लाशरीक को मसअला इमकाने किज़्ब के परदे में झूठा कहे और उसके प्यारे महबूब सरवरे कौनेन सय्यदे आलम रूही फ़िदाह स॰ को बड़ा भाई, गावं का ज़मींदार, चौधरी, मर कर मिट्टी में मिलने वाला कहे।

अगर उसने मौलाना अबुल–कलाम अज़ाद, मौलाना मौदूदी, मौलाना शिब्ली नोमानी, सरसय्यद अहमद खा़ं, अल्लामा शामी मिर्ज़ा गुलाम अहमद क़ादयानी हत्ता कि सिर्फ़ एक किताब में सैय्यदना इमाम अहमद रज़ा फ़ाज़िल बरैलवी रजि॰ को छः सौ चालिस गालियां दी हों तो ये कोई हैरत का मकाम नहीं। इस तहरीर का मकसद किसी की तकदीस व सफ़ाई नहीं है बल्कि कहना ये है कि आपने जिसे जैसा समझा, वैसा कह दिया। बस ऐसे ही अगर उलमा–ए–अह्ले सुन्नत की नज़र में आप तौहीने नुबुव्वत के मुजरिम हैं। ऐसे मुजरिम का जो हुक्म है अगर उसका एलान कर दिया

गया तो 'काफ़िर को भी काफ़िर न कहो' का नारा क्यों बलंद किया जा रहा है। ये इस्लाम की ग़ासिबाना ठेकेदारी आपको कहां से मिल गई। जो हक़ आपने दूसरों पर इस्तेमाल किया है वही हमारे इमाम सय्यदना इमाम अहमद रज़ा फ़ाज़िल बरैलवी रजि॰ ने आप पर इस्तेमाल किया है। जहां तक अल्लामा शामी और सय्यदना इमाम अहमद रज़ा और उनके अम्साल का तअल्लुक़ है उनका दामन उन तमाम आलाइशों से पाक व साफ़ है जिसकी निस्बत उनकी तरफ़ की गई है। आसमान का थूका खुद मुंह पर आता है। रह गए दूसरे अफ़राद उनके अज़्नाब व अख़लाफ़ आपसे निपटते रहेंगे।

किताब प्रेस जा रही है। ये चंद सतरें क़लम–बरदाश्ता तहरीर की गई हैं। हम पुरउम्मीद हैं कि ये शवाहिद व नज़ाइर ज़ेहन व फ़िक्र की तत्हीर और हुसूल व एतमाद के लिए काफ़ी होंगी। आइंदा जब कहीं या जहां कहीं भी, अक़ानीमे सलासा[१] पहुंचें और इस नौइय्यत का फ़ित्ना उठाना चाहें तो उन्हीं शवाहिद की रौशनी में उनसे इस्तिफ़सार किया जाए। मैंने इन सफ़हात का इज़ाफ़ा इसलिए कर दिया कि नागपुर ही का फ़ित्ना नहीं है बल्कि ये हज़रात जहां कहीं पहुंते हैं देवबंदियों में अपना रोब जमाने, सस्ती शोहरत कमाने और तक़रीर का मार्केट बनाने के लिए यही हथियार इस्तेमाल करते हैं –

बदनाम हुए हैं तो क्या, नाम न होगा.

इसी पर उन हज़रात का अमल है।

आप खुद फ़ैसला कर सकते हैं कि जो क़ौम खुदा–ए–वहदहू ला–शरीक और आक़ा–ए–दो जहां (स॰) को गालियां दे। अगर उसने इस मुल्क की एक दीनदार अंसारी बिरादरी को मुंह भर कर गालियां दी हों और उनकी तज़लील व तज़हीक के कोई दक़ीका न उठा रखा हो उससे हम उम्मीदे वफ़ा क्यों कर सकते हैं? जब देवबंदी मुल्लाओं ने इसको फिर जगाया है तो अब इसका जवाब यही है कि उनसे माफ़ी और उन दिल–आज़ार किताबों के नज़रे आतिश का मोतालबा किया जाए।

सय्यदना इमाम अहमद रज़ा की हैसियत अक़वाले फ़ुक्हा के नाक़िल की है। गोया हिकायत है, इंशा नहीं है। उन्होंने अपनी तरफ़ से कुछ नहीं

(१) मोलवी इर्शाद अहमद, मोलवी नूर मुहम्मद टांडवी, राग़िब भोपाली।

फ़रमाया। लेकिन उलमा–ए–देवबंद ने अपने दिलख़राश व दिल–अज़ार जुम्लों से अमदन इंतिहाई रकीक व नारवा हमले किए हैं जो यक़ीनन उलमा–ए–देवबंद की पेशानी पर कलंक के टीका हैं।

खुदाए क़दीर हममें इत्तिहाद व इत्तिफ़ाक़ की ऐसी स्प्रिट और मरदुम–शनासी का वो जौहर अता फ़रमाए कि आइंदा गंदुम–नुमा, जौ–फ़रोश व्यापारी बरसरे बाज़ार हमारे इज़्ज़ व वक़ार के नीलाम की हिम्मत न कर सके!

अपनी तो अब तमाम हुई काइनाते ग़म
दो अश्क थे सो दीदा-ए-तर से गुज़र गए

❖❖❖

मुशताक़ अहमद निज़ामी

ख़ादिम, सुन्नी तबलीग़ी जमाअत व मोहतमिम
दारुल-उलूम ग़रीब नवाज़, इलाहाबाद

१५/जिल्हिज्जा ६७ हिजरी मुताबिक़ ७/नवम्बर ७७ ई॰